



---

मसीही विश्वासियों के लिए “रोमियों” नामक बाइबेल-पुस्तक का एक अध्ययन

---

# ROMION

---

**First Hindi Edition : June-2007**

---

Adapted into Hindi by : **J.P. Pandey**  
Assisted by : **R.K. Khullar**

---

*This book is based on the English title "Lessons in ROMANS for growing believers" (Tim Mcmanigle) published by the Fellowship Bible Church, 3217, Middle Road, Winchester, VA. (U.S.A.).*

---

Copyright © The Fellowship Bible Church,  
Winchester, VA. (U.S.A.).

---

**All rights reserved**

Printed in Nepal

## विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
एक	5–13
दो	14–18
तीन	19–25
चार	26–37
पाँच	38–46
छः	47–55
सात	56–65
आठ	66–71
नौ	72–86
दस	87–88
ग्यारह	89–106
बारह	107–118
तेरह	119–128
चौदह	129–143

# शेमियों

नामक

बाइबल-पुस्तक का एक संक्षिप्त अध्ययन

**नया नियम** अनेक पुस्तकों का एक संग्रह है। पवित्र आत्मा ने प्रेरितों एवं अन्य विश्वासियों का इस्तेमाल करके इन पुस्तकों को लिपिबद्ध कराया। प्रारम्भ में इन्हें विशिष्ट कलीसियाओं या फिर विशिष्ट व्यक्तियों के नाम पत्रों के रूप में लिखा गया था। इनमें से अनेक पत्र पौलुस द्वारा लिखे गये थे। शुरू में विशिष्ट व्यक्तियों और विशिष्ट कलीसियाओं के लिये लिखे जाने के बावजूद, प्रभु परमेश्वर की प्रेरणा से इन दस्तावेजों को सुरक्षित रख कर तब से अब तक की कलीसियाओं में वितरित किया जाता रहा है। अब इन पुस्तकों के संग्रह को **"नया नियम"** कहा जाता है। पौलुस ने अपने अधिकतर पत्र उन्हीं मंडलियों को लिखे जो उसकी सेवकाई से प्रारम्भ हुयीं; किन्तु उसने कुछेक पत्र ऐसी मंडलियों को भी लिखे जिन्हें दूसरों ने शुरू किया था। **रोमियों** नामक पत्री ऐसी ही एक पत्री है अर्थात् अन्य किसी के द्वारा शुरू की गई एक मंडली के नाम पौलुस की एक पत्री।

शायद आपको याद हो कि प्रभु का जन होने से पूर्व पौलुस का जीवन कैसा था। बहरहाल, प्रभु यीशु पर विश्वास करने के बाद वह चहुँओर मसीह के सुसमाचार का प्रचार करने लगा था। जब वह पहली बार सुसमाचार प्रचार यात्रा में निकला तो यरुशलेम से कुरिन्थुस तक गया। कुल मिला कर उसने इस प्रकार की तीन मिशनरी यात्राएँ कीं। अपनी अंतिम सुसमाचार प्रचार (मिशनरी) यात्रा

के बाद उसने उन स्थानों पर जाने का निर्णय लिया जहाँ तब तक सुसमाचार प्रचार नहीं हुआ था। अतः उसने यरुशलेम वापस आकर स्पेन की ओर जाने की योजना बनायी। स्पेन की ओर जाते समय पौलुस ने रास्ते में रुक कर रोम के विश्वासियों से भी भेंट करने का विचार किया था। अतः उसने उन्हें यह पत्र लिख कर अपनी योजना बतायी और साथ ही साथ सुसमाचार का स्पष्ट अर्थ भी बताया। **प्रेरितों के काम** की पुस्तक से ज्ञात होता है कि पौलुस अन्ततः रोम गया, किन्तु एक कैदी के रूप में। परम्परा के अनुसार, रोमन सम्राट (नीरो) ने उसे मृत्यु-दंड दिया। रोम के विश्वासियों को कुरिन्थुस से पौलुस ने जो पत्र लिखा था वह अब पवित्रशास्त्र बाइबल में शामिल है; जिसे **रोमियों** के नाम से जाना जाता है। इस संक्षिप्त अध्ययन में हम **रोमियों** के प्रत्येक पद के बजाय कुछ खास हिस्सों का ही अध्ययन करेंगे।

*“पौलुस की ओर से, जो मसीह यीशु का दास है, और प्रेरित होने के लिए बुलाया गया, और परमेश्वर के उस सुसमाचार के लिए पृथक किया गया है” (रोमियों 1:1)।* पौलुस ने अपना परिचय देते हुए इस पत्री को प्रारम्भ किया। उसने स्वयं को **“मसीह यीशु का दास”** कहा। उसका तात्पर्य यह था कि वह स्वेच्छा से प्रभु का दास है, किसी के दबाव में नहीं। परमेश्वर के अनुग्रह द्वारा मृत्यु, नरक एवं कब्र के बन्धन से छुड़ाए जाने के कारण पौलुस अपने जीवन को मसीह की सेवा में खर्च करना चाहता था। जब इस्राएली लोग मिस्त्रियों की गुलामी में थे तो वे जोर-जबरदस्ती के गुलाम थे। वह लोग गुलामी में नहीं रहना चाहते थे। परन्तु पौलुस

की बात भिन्न थी। वह तो मसीह यीशु की गुलामी में रहने का आकांक्षी था। अपने मन-परिवर्तन से पूर्व वह शैतान एवं पाप का गुलाम था, किन्तु उद्धार-प्राप्ति के बाद वह अपने जीवन से प्रभु यीशु की सेवा करना चाहता था। इसी पहले पद में पौलुस यह भी कहता है कि वह "प्रेरित होने के लिए बुलाया गया" है। इसका अर्थ यह है कि प्रभु यीशु ने पौलुस को सुसमाचार प्रचार के लिए (भेजने हेतु) बुलाया। क्या आपको याद है कि जब दमिश्क में हनन्याह नामक चेला पौलुस के पास जाने से डर रहा था तो प्रभु ने उससे क्या कहा? प्रेरितों के काम के नौवें अध्याय के पन्द्रहवें पद में इसका उत्तर मिलता है। रोमियों के पहले अध्याय के पहले पद में पौलुस की तीसरी बात पर ध्यान दें! पौलुस ने कहा कि उसे "परमेश्वर के सुसमाचार के लिए पृथक किया गया" है। चूँकि उसे सुसमाचार-प्रचार के लिए भेजने हेतु बुलाया गया था, अतः यही उसका कार्य-दायित्व था। उसे अपना जीवन अपनी मन-मर्जी पूरा करने में नहीं व्यतीत करना था, बल्कि प्रभु परमेश्वर की इच्छा-योजना को प्राथमिकता देना था।

*"उन सब को जो रोम में परमेश्वर के प्रिय हैं और पवित्र होने के लिए बुलाए गए हैं : हमारे पिता परमेश्वर और प्रभु यीशु में तुम्हें अनुग्रह और शान्ति मिले"* (रोमियों 1:7)। अपने बारे में कुछ बताने के बाद पौलुस ने रोम की मंडली के विश्वासियों के बारे में लिखा। उसने उन्हें परमेश्वर की संतान (परमेश्वर के प्रिय जन) कहा। यूहन्ना के सुसमाचार के तीसरे अध्याय के सोलहवें पद के अनुसार परमेश्वर सारे संसार के लोगों से प्रेम करता है। यद्यपि वह

संसार के सब लोगों से प्रेम करता है तथापि अपनी संतानों के प्रति विशेष प्रेम रखता है। हाँ, वह सब के प्रति प्रेम रखता है, किन्तु पवित्रशास्त्र बाइबल में "परमेश्वर के प्रिय" वाक्यांश सिर्फ विश्वासियों के लिए प्रयोग हुआ है, अविश्वासियों के लिए नहीं। परमेश्वर के प्रेम पर हमें शंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह सभी विश्वासियों के प्रति वैसा ही प्रेम रखता है जैसा कि अपने एकलौते पुत्र के प्रति। तत्पश्चात् पौलुस ने रोम के विश्वासियों से यह कहा कि वे 'संत या पवित्र' जन होने के लिए बुलाए गए हैं। यहाँ संत या पवित्र शब्द का अर्थ है : पृथक या अलग किए हुए जन। परमेश्वर की संतान हो जाने के बाद उसने हममें से प्रत्येक को विशिष्ट तौर पर ईश्वरीय इच्छा-योजना के अनुसार इस्तेमाल के लिए पृथक कर लिया है; अर्थात् उसकी दृष्टि में जो उपयुक्त एवं उचित है उसी के अनुरूप हमें इस्तेमाल करने हेतु। प्रभु के द्वारा बचाए जाने से पूर्व, शैतान ने हमारे दिलो-दिमाग एवं देह को अपनी इच्छा-योजनानुसार सोच-विचार और क्रिया-कलाप में इस्तेमाल किया। अब हम परमेश्वर के जन हो गए हैं और अब वह अपनी इच्छा-योजनानुसार हमें इस्तेमाल करना चाहता है।

रोम में रहने वाले सब विश्वासी परमेश्वर के अनुग्रह द्वारा उद्धार पाये थे। अब प्रभु परमेश्वर के साथ उनका मेल-मिलाप हो गया था और अब वे उसके साथ शत्रुता की अवस्था में नहीं थे। प्रभु परमेश्वर के साथ अब उनकी एकता (शांति व मेल-मिलाप) स्थापित हो चुकी थी। मूलतः आदम की भी परमेश्वर के साथ एकता थी, किन्तु पाप में गिरने के परिणाम स्वरूप वह परमेश्वर से पृथक (दूर)



हो गया। अतः आदम को जो मिला, वही विरासत हमें भी मिली; अर्थात् हम भी परमेश्वर से पृथकता की अवस्था में जन्म लिये (इफि 2:1)। अब क्रूस पर मसीह यीशु ने अपने निष्कलंक बलिदान (लहू) द्वारा हमें परमेश्वर की संगति में पुनः वापस खरीदा है।

इस प्रकार रोम की मंडली के विश्वासियों का उद्धार केवल परमेश्वर के अनुग्रह द्वारा ही हुआ था। यही बात हमारे लिए भी सच है। हम जिस लायक थे, प्रभु परमेश्वर ने हमें वही नहीं दिया – अर्थात् नरक। इसके बजाय उसने अपने एकलौते पुत्र की मृत्यु के द्वारा हमें परमेश्वर की संतान होने का हक प्रदान किया है। हमें इस ईश्वरीय अनुग्रह की आवश्यकता सिर्फ उद्धार-प्राप्ति के लिए ही नहीं थी, बल्कि ईश्वरपरायण (पवित्र) जीवन जीने हेतु भी इसकी ज़रूरत है। परमेश्वर के साथ सभी विश्वासियों का मेल-मिलाप हो गया है। अब हम उसके विरोधी (शत्रु) नहीं हैं। लेकिन कभी-कभी जब हम कठिन समस्या में होते हैं तो प्रभु की ओर देखते रहना छोड़ कर अपनी समस्या पर ध्यान लगाने लगते हैं। नतीज़तन चिन्ता, भय और हताशा हमारे भीतर अपना घोंसला बनाने लगते हैं। इसीलिए पौलुस ने रोम के विश्वासियों को यह सच्चा आश्वासन दिया कि प्रभु परमेश्वर उनकी सर्वोत्तम देखभाल करेगा, क्योंकि वह उनका आत्मिक पिता है।

*“पहिले तो मैं तुम सब के लिए मसीह यीशु के द्वारा परमेश्वर का धन्यवाद करता हूँ, क्योंकि तुम्हारे विश्वास की चर्चा समस्त संसार में हो रही है”* (रोमियों 1:8)। रोम के विश्वासियों के लिए पौलुस ने परमेश्वर को धन्यवाद अर्पित किया, क्योंकि प्रभु पर

उनके विश्वास की सर्वत्र चर्चा हो रही थी। मेरा और आपका विश्वास कैसा है? हमारे विश्वास के बारे में लोग क्या कहते हैं? (कुलु0 1:4; इफि0 1:15)।

*“क्योंकि परमेश्वर, जिसकी सेवा मैं अपनी आत्मा में उसके पुत्र के सुसमाचार में करता हूँ, मेरा साक्षी है कि मैं तुम्हें किस प्रकार निरन्तर स्मरण करता हूँ, तथा सदैव अपनी प्रार्थनाओं में विनती करता हूँ” (रोमियों 1:9)। पौलुस ने रोम के विश्वासियों के लिए लगातार प्रार्थना किया। हमें भी एक दूसरे के लिए प्रार्थना करना चाहिए। “तथा सदैव अपनी प्रार्थनाओं में विनती करता हूँ कि कम से कम अब मैं परमेश्वर की इच्छा से तुम्हारे पास आने में सफल हो जाऊँ। क्योंकि मैं तुमसे मिलने की लालसा करता हूँ, जिससे कि तुम्हें कुछ आत्मिक वरदान दे सकूँ कि तुम दृढ़ हो जाओ; अर्थात् जब मैं तुम्हारे मध्य होऊँ तो हम आपस में एक दूसरे के विश्वास से प्रोत्साहित किए जाएं। भाइयों, मैं नहीं चाहता कि तुम इस से अनजान रहो कि मैंने बार-बार तुम्हारे पास आने की योजना बनाई और अब तक रोका गया जिससे कि मुझे तुम्हारे बीच में भी कुछ फल मिले, जैसा कि शेष गैरयहूदियों के बीच मिला” (रोमियों 1:10-13)।*

पौलुस की यह भी प्रार्थना थी कि वह रोम के इन विश्वासियों से भेंट कर सके और परमेश्वर की कृपा से प्रभु पर उनके विश्वास एवं भरोसे को और दृढ़ करने में इस्तेमाल हो सके। पौलुस उन्हें प्रभु की शिक्षा का स्मरण कराना चाहता था तथा कुछ और आवश्यक एवं नई शिक्षा देना चाहता था। परमेश्वर के वचन की

शिक्षा को पौलुस सबसे महत्वपूर्ण मानता था। क्या लोगों से भेंट-मुलाकात व परामर्श आवश्यक है? क्या कुछ ऐसे लोग हैं जो पहले विश्वासियों के साथ संगति एवं आराधना करते थे, लेकिन अब ऐसा नहीं करते? ऐसे लोगों की सहायता के लिए क्या करना चाहिए (इब्रा0 10:24-25)? उनके लिए प्रार्थना की जा सकती है और सही समय पर वचन से शिक्षा-परामर्श प्रदान किया जा सकता है। केवल परमेश्वर का वचन ही लोगों का प्रोत्साहन और मन-परिवर्तन कर सकता है। जैसे कि पौलुस भी यह जानता-समझता था कि इन विश्वासियों के साथ संगति-सहभागिता से उसे मसीही विश्वास में प्रोत्साहन प्राप्त होगा। बेशक हमें भी एक-दूसरे की संगति-सहभागिता की आवश्यकता है।

*“मैं सुसमाचार से लज्जित नहीं होता, क्योंकि यह प्रत्येक विश्वास करने वाले के लिए, पहले यहूदी और फिर यूनानी के लिए, उद्धार के निमित्त परमेश्वर की सामर्थ्य है” (रोमियों 1:16)।*

- सबसे पहले सुसमाचार की परिभाषा समझना ज़रूरी है। इसके लिए पहला कुरिन्थियों 15:1-5 पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है। पवित्र बाइबल के इस परिच्छेद से सुस्पष्ट है कि मसीह यीशु की मृत्यु एवं उसका पुनरुत्थान ही सुसमाचार है।
- पौलुस सुसमाचार से क्यों लज्जित नहीं था? क्योंकि सुसमाचार प्रभु परमेश्वर का वह सामर्थी संदेश है जो पापियों को शैतान के नियंत्रण से छुटकारा देता है और उन्हें उनके अपने पाप एवं उसके दण्ड से भी छुटकारा प्रदान करता है।

- क्या आपको याद है कि आपने सुसमाचार कैसे सुना, और परमेश्वर के संदेश पर विश्वास करने हेतु उसने आपके मन को किस प्रकार खोला? क्या परमेश्वर के सुसमाचार ने आपके जीवन को परिवर्तित कर दिया है? ईश्वरीय प्रेम एवं क्षमा-दान का यह संदेश आपमें क्या बदलाव लाया है?
- पौलुस ने इस सुसमाचार की सामर्थ्य के कार्य-फल को अपने जीवन में तथा हजारों अन्य लोगों के जीवन में देखा था। यह सुसमाचार प्रभु परमेश्वर का वह सामर्थ्यपूर्ण संदेश है जिसके द्वारा वह पापियों को उद्धार प्रदान करता है।
- सुसमाचार के बारे में पौलुस ने एक अन्य बात भी कही है : "पहले यहूदी और फिर यूनानी के लिए"। प्रभु यीशु का सुसंदेश पहले यहूदियों को प्रदान किया गया। प्रतिज्ञात् उद्धारकर्ता सम्बन्धी वायदा पहले अब्राहम को दिया गया और इसके बाद प्रभु परमेश्वर ने अपने अनेक भविष्यवक्ताओं के द्वारा उद्धारकर्ता के बारे में बारम्बार प्रतिज्ञाएं प्रदान कीं। अब्राहम की वंशज मरियम से यीशु का जन्म हुआ। प्रभु यीशु के सभी प्रेरित यहूदी थे। सबसे पहला सुसमाचार-प्रचार भी यहूदियों के मध्य उनके पिन्तेकुस्त नामक पर्व के दिन हुआ।
- प्रभु परमेश्वर का यह सुसमाचार प्रथमतः यहूदियों को प्रदान किया गया और इसीलिए पौलुस जब किसी नये स्थान पर पहुँचता था तो वहाँ सबसे पहले वह यहूदी सभाघर में प्रचार करने जाता था। जब यहूदी उसके संदेश को अस्वीकार करते थे तब वह गैरयहूदियों के बीच जाता था।

- पौलुस ने रोमियों के पहले अध्याय के सत्रहवें पद में परमेश्वर के सुसमाचार के सम्बन्ध में एक अन्य बहुत महत्वपूर्ण बात कही है :  
*“क्योंकि इसमें परमेश्वर की धार्मिकता विश्वास से और विश्वास के लिए प्रकट होती है, परन्तु धर्मी मनुष्य विश्वास से जीवित रहेगा”* (रोमियों 1:17)।

हम सब पापी हैं और पाप करने वाले को दण्डित करना पवित्र परमेश्वर की धार्मिकता (righteousness – रास्तबाजी) का तकाजा है। बेशक, प्रभु परमेश्वर पापियों को बचाना चाहता है, लेकिन वह ऐसा तब तक नहीं कर सकता जब तक कि उनके पाप का पूर्णरूपेण एवं न्याय संगत दंड-मूल्य नहीं चुकाया जाता। पाप का दंड-मूल्य अदा किया जाना परमावश्यक है। चूँकि प्रभु यीशु ने हमारे पाप का दंड-मूल्य पूर्णरूपेण चुकता किया इसलिए पवित्र परमेश्वर के न्याय-धर्म का तकाजा पूरा हुआ, और वह हमारे पापों को क्षमा कर सकता है और मसीह के द्वारा वह अपने समक्ष हमें धर्मी (निर्दोष) जन के रूप में ग्रहण कर सकता है। अब प्रभु परमेश्वर की दृष्टि में हम मसीह की धार्मिकता (निर्दोषता) रूपी पोशाक से ढके जा चुके हैं। विश्वासीजन उसकी दृष्टि में पापी एवं दुष्ट नहीं है। हमारे पाप तथा उसके दोष-दंड को प्रभु यीशु अपने ऊपर ले चुका है, और हमें उसकी धार्मिकता (रास्तबाजी, righteousness व निर्दोषता) प्राप्त हुयी है।

“इसीलिए परमेश्वर का प्रकोप मनुष्यों की समस्त अभक्ति और अधार्मिकता पर स्वर्ग से प्रकट होता है, क्योंकि वे सत्य को अधर्म से दबाए रखते हैं” (रोमियों 1:18)। सम्पूर्ण बाइबल इस बात को प्रमाणित करती है कि पाप के प्रति परमेश्वर का प्रकोप अवश्य प्रकट होता है। जब-जब संसार के लोग परमेश्वर की बात नहीं माने (उस पर विश्वास नहीं किए) तब-तब उसने उन्हें दंडित किया। पवित्र बाइबल में इस सच्चाई के अनेक उदाहरण हैं। परमेश्वर का प्रकोप सबसे पहले अदन की वाटिका में प्रकट हुआ – आदम और हव्वा के अविश्वास के कारण। पृथ्वी को परमेश्वर ने शाप दिया और आदम-हव्वा को अदन की वाटिका से बाहर कर दिया। तब से संसार में दुःख, बीमारी और मृत्यु का कार्य-प्रभाव है। प्रत्येक अरथी (जनाजा) पाप के प्रति सच्चे परमेश्वर की घृणा का प्रमाण (प्रतीक) है। नूह के समय में जल प्रलय द्वारा संसार के लोगों का विनाश करके प्रभु परमेश्वर ने पाप के प्रति अपना प्रकोप (घृणा) प्रकट किया। इसके बाद सदोम और अमोरा का विनाश करके, मिस्र से इस्राएलियों की आजादी के लिए मिस्रियों को दंडित करके तथा सीनै पर्वत पर मूसा को व्यवस्था देते समय इस्राएलियों द्वारा किए गये पाप को दंडित करके पाप के प्रति अपना प्रकोप (घृणा) प्रकट किया। यह सब पाप के प्रति परमेश्वर की घृणा का सच्चा प्रदर्शन था। बहरहाल, पाप के प्रति सत्य परमेश्वर की घृणा का सबसे स्पष्ट प्रदर्शन तब हुआ जब हमारे पापों के बदले परमेश्वर ने अपने ‘एकलौते पुत्र’ (मसीह यीशु) को क्रूस पर दंडित किया। जब प्रभु परमेश्वर ने ‘क्रूस पर मसीह’ से अपना मुंह फेर लिया तब उसने

ऐसा इसलिए किया क्योंकि उसके 'एकलौते पुत्र' पर सारे संसार का पाप था। इस प्रकार पुत्र (परमेश्वर) से पिता (परमेश्वर) पहली बार पृथक हुआ, कुछ उसी प्रकार जैसे कि सृष्टि के आरम्भ में पाप के कारण आदम से अलग हुआ था।

अब अट्ठारहवें पद से पौलुस यह दर्शाता है कि अविश्वासी जन ने परमेश्वर के उस सत्य-ज्ञान को स्वीकार नहीं किया है जो उस पर प्रकट है। "परमेश्वर से सम्बन्धित ज्ञान मनुष्यों पर प्रकट है, क्योंकि परमेश्वर ने उन पर प्रकट किया है। इसलिए परमेश्वर का प्रकोप मनुष्यों की समस्त अभक्ति और अधार्मिकता पर स्वर्ग से प्रकट होता है, क्योंकि वे सत्य को अधर्म से दबाए रखते हैं। क्योंकि जगत की सृष्टि से ही परमेश्वर के अदृश्य गुण, अनन्त सामर्थ्य और परमेश्वरत्व उसकी रचना के द्वारा समझे जाकर स्पष्ट दिखाई देते हैं, इसलिए उनके पास कोई बहाना नहीं है" (रोमियों 1:18-20)।

इन पदों में पौलुस मनुष्य जाति को यह प्रदर्शित करता है कि परमेश्वर के समक्ष उनके पास कोई बहाना नहीं है, क्योंकि सृष्टि के द्वारा प्रभु परमेश्वर स्वयं को स्पष्टतः प्रकट कर चुका है। सृष्टि यह प्रदर्शित करती है कि सर्वशक्तिमान परमेश्वर ही सृष्टि का रचयिता है और सिर्फ उसी का ही आदर-मान एवं उपासना होनी चाहिए।

परमेश्वर के ज्ञान के प्रति संसार के अधिकतर लोगों ने कैसी प्रतिक्रिया दर्शायी है? उन्होंने जानबूझकर सत्य को सदैव दबाया है और उससे दूर भागते रहे हैं। उदाहरणार्थ, कैन ने क्या किया? उसने परमेश्वर के आदेश एवं उसके उपाय को जानते हुए भी अपना तौर-तरीका अपनाया और परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन किया। उसके सभी वंशजों ने भी वही मार्ग अपनाया और परमेश्वर से दूर

रहे। "क्योंकि यद्यपि वे परमेश्वर को जानते थे, फिर भी उन्होंने उसे न तो परमेश्वर के उपयुक्त सम्मान, और न ही धन्यवाद दिया, वरन् वे अनर्थ कल्पनाएं करने लगे, और उनका निर्बुद्धि मन अन्धकारमय हो गया" (रोमियों 1:21)।

जल प्रलय के बाद नूह के अधिकतर वंशज भी परमेश्वर के मार्ग से दूर रहे। बाबेल की मीनार बनाने का तत्कालीन प्रयास भी इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य के मन में परमेश्वर से दूर रहने और अपनी समझ मात्र के भरोसे जीने की अभिलाषा पायी जाती है। (उत्प0 11:1-9)। पवित्र शास्त्र के अध्ययन से हमें यह ज्ञात होता है कि मनुष्य परमेश्वर से दूर भागते-भागते इतना मूर्ख हो गया कि जानवरों की इबादत (उपासना) करने लगा। उपर्युक्त इक्कीसवें पद के अनुसार जानबूझकर सत्य के प्रति अपने मन की आंख मूंद लेने पर मनुष्य इतना विवेकहीन हो गया कि अन्ततः परमेश्वर के सच्चे ज्ञान को खो बैठा। सत्य परमेश्वर का मौलिक सत्य-ज्ञान सत्य को अस्वीकार करने के द्वारा ही खो दिया गया (इफि0 4:17-19)। अपने पाप को अंगीकार करके परमेश्वर की ओर मन फिराने के बजाय, मनुष्य अपनी मूर्खता में ही लगा रहा। उन प्रारम्भिक दिनों के बाद प्रत्येक पीढ़ी का मनुष्य परमेश्वर के बारे में अनेक प्रकार की मूर्खतापूर्ण कल्पनाओं के बहाव में बहता रहा है। यहाँ तक कि वे सच्चे परमेश्वर के बजाय रेंगने वाले जीव-जन्तुओं की उपासना करने लगे हैं। "उन्होंने अविनाशी परमेश्वर की महिमा को नश्वर मनुष्य, पक्षियों, चौपायों और रेंगने वाले जन्तुओं की मूर्ति की समानता में बदल डाला है" (रोमियों 1:23)।

अब्राहम के दिनों के लोग भी मूर्तिपूजक थे। मूसा के समय के मिस्री लोग परमेश्वर द्वारा बनाई विभिन्न चीजों तथा अनेक प्रकार



के जानवरों की पूजा करते थे। परमेश्वर से विमुख होकर कई बार इस्राएलियों ने भी अपने अविश्वासी पड़ोसियों के झूठे देवी-देवताओं की पूजा की। इस्राएलियों के प्रतिज्ञात देश पर विजयी होने से पूर्व वहाँ रहने वाले कनानी लोग भी मूर्तिपूजक थे। कनान पहुंचने पर वहाँ के लोगों के दुष्टतापूर्ण कार्य-व्यवहार को नहीं अपनाने की प्रभु परमेश्वर ने इस्राएलियों को पहले से ही चेतावनी दी थी (निर्गो 23:23-25)।

सच्चे परमेश्वर से दूर रहकर दूसरी चीजों की पूजा करने के प्रबल आकांक्षी मनुष्य (जाति) को प्रभु परमेश्वर ने स्वेच्छाचारी होने के लिए छोड़ दिया। उसने जबरन उसे अपना अनुयायी नहीं बनाया बल्कि उन्हें उनकी मनमर्जी के अनुसार पाप, दुष्टता व भ्रष्टता का गुलाम होने दिया। चौबीसवें, छब्बीसवें तथा अट्ठाइसवें पदों में कुल तीन बार यह वाक्यांश पाया जाता है : **“परमेश्वर ने उन्हें उनके भ्रष्ट मन के वश में छोड़ दिया”**। *“इसलिए परमेश्वर ने उन्हें उनके मन की वासनाओं की अशुद्धता के लिए छोड़ दिया, कि उनके शरीरों का आपस में अनादर हो। क्योंकि उन्होंने परमेश्वर की सच्चाई के बदले झूठ को अपनाया और सृष्टि की आराधना और सेवा की - न कि उस सृष्टिकर्ता की जो सर्वदा धन्य है, आमीन”*।

*“इस कारण परमेश्वर ने उन्हें नीच कामनाओं के वश में छोड़ दिया, क्योंकि उनकी स्त्रियों ने स्वाभाविक क्रिया को उससे जो अस्वाभाविक है, बदल डाला। और इसी प्रकार पुरुष भी स्त्रियों के साथ स्वाभाविक क्रिया को छोड़कर आपस में कामातुर हो कामाग्नि में जलने लगे, पुरुषों ने पुरुषों के साथ निर्लज्ज कार्य करके अपने ही में भ्रष्टाचार का उचित दण्ड पाया”*।

“जब उन्हें परमेश्वर को मानना और अधिक उचित न लगा, तब परमेश्वर ने भी उन्हें उनके भ्रष्ट मन के वश में छोड़ दिया, कि वे अनुचित कार्य करें, अतः वे सब प्रकार की अधार्मिकता, दुष्टता, लोभ, द्वेष से तथा सारी ईर्ष्या, हत्या, झगड़े, छल व डाह से भर गए। वे बकवादी, निन्दक, परमेश्वर से घृणा करने वाले, ढीठ, हठी, डींगमार, बुराई करने वाले, माता-पिता की आज्ञा न मानने वाले, समझ रहित, विश्वासघाती, प्रेम-रहित और दया-रहित, हो गए। यद्यपि वे परमेश्वर की विधि जानते हैं कि जो इस प्रकार का आचरण करते हैं वे मृत्यु के योग्य हैं, फिर भी वे न केवल स्वयं ही यह कार्य करते हैं, परन्तु ऐसा आचरण करने वालों का हृदय से समर्थन भी करते हैं” (रोमियों 1:24-32)।

इन बाइबल पदों से सुस्पष्ट है कि सेक्स-सम्बन्धी भ्रष्टता तथा अन्य विभिन्न प्रकार के पापों की शुरुआत मनुष्य के सच्चे परमेश्वर के ज्ञान से विमुख होने के कारण हुई। अतः प्रभु यीशु मसीह के माध्यम से परमेश्वर पिता द्वारा प्रदान किए गए क्षमा एवं छुटकारे की अनदेखी करना खतरनाक खेल है। प्रभु परमेश्वर द्वारा दी गई चेतावनी को अप्रासंगिक और अमहत्वपूर्ण मानना आत्म-विनाश का मार्ग अपनाना है। (रोमियों के नाम पौलुस की पत्नी के इस पहले अध्याय पर प्रार्थनापूर्वक मनन-चिन्तन करने के लिए पर्याप्त समय देना सहायक सिद्ध होगा)।

## तीन

रोमियों के नाम पौलुस की पत्री के पहले अध्याय में पौलुस यह दर्शाता है कि प्रभु परमेश्वर द्वारा गैरयहूदियों का दोषी ठहराया जाना पूर्णतः न्यायसंगत है। उनकी अपनी ऐसी कोई धार्मिकता नहीं है जिसके आधार पर परमेश्वर के समक्ष वे स्वीकार्य (या धर्मी ठहराए जा सकते) हैं। उन्होंने प्रभु परमेश्वर द्वारा प्रकट की गई प्रकाशना का तिरस्कार किया है। इसके बाद, रोमियों के दूसरे अध्याय में पौलुस ने विशिष्ट अवसर, प्रकाशना एवं ज्ञान की लाभप्रद सुविधाओं से सम्पन्न यहूदियों को भी प्रभु परमेश्वर के समक्ष न्यायसंगत रूप में दोषी ठहराया है। हाँ, उनके पास परमेश्वर का वचन था और वे स्वयं को वचन के शिक्षक समझते थे, लेकिन प्रभु की सच्ची भक्ति एवं उसकी आज्ञाकारिता से दूर थे। अतः स्वयं को नैतिक या यहूदी समझने वाले, गैरयहूदियों के पापों की निन्दा करके अपने आपको धार्मिक नहीं बना सकते। *“अतः हे दोष लगाने वाले, तू कोई क्यों न हो निरुत्तर है, क्योंकि जिस बात में तू दूसरों पर दोष लगाता है उसी बात में स्वयं को दोषी ठहराता है, क्योंकि तू जो दोष लगाता है, स्वयं भी वैसे ही कार्य करता है। और हम जानते हैं कि ऐसे कार्य करनेवालों पर परमेश्वर के दण्ड की आज्ञा उचित ही होती है। हे मनुष्य, तू जो दूसरों पर ऐसे कार्य करने का दोष लगाता है और स्वयं ही वे कार्य करता है, क्या यह समझता है कि तू परमेश्वर के दण्ड की आज्ञा से बच जाएगा”* (रोमियों 2:1-3)?

नैतिक लोग यह सोचते हैं कि गैरयहूदियों की बाह्य बुराईयों की निन्दा करने के द्वारा वे ईश्वर के समक्ष स्वीकार्य हैं।

सम्भव है कि वे बाह्य तौर पर उन्हीं बुराईयों में न लगे हों, किन्तु उनका अन्तर्मन उतना ही बुरा है। अतः परमेश्वर के समक्ष वे भी गैरयहूदियों के समान बुरे (पापी) हैं। इसीलिए पौलुस नैतिकवादियों को चेतावनी देता है कि वे स्वयं को चाहे जितना भला-चंगा (धर्मी) समझें, किन्तु परमेश्वर की दृष्टि में वे भी अन्य जातियों (गैरयहूदियों) के समान ही बुरे हैं (मत्ती 15:8)।

*“तू उसकी कृपा, सहनशीलता और धैर्य रूपी धन को तुच्छ जानता है, और नहीं जानता कि परमेश्वर की कृपा तुझे मन-परिवर्तन की ओर ले आती है? परन्तु अपने हठीले और अपरिवर्तित मन के कारण तू परमेश्वर के प्रकोप के दिन के लिए और उसके सच्चे न्याय के प्रकट होने तक, अपने लिए क्रोध संचित कर रहा है”* (रोमियों 2:4-5)। अपने को सदाचारी समझने वालों पर ईश्वरीय दण्ड में देरी होने के कारण वे यह सोचने की भूल कर बैठते हैं कि परमेश्वर उनके पाप की अनदेखी करता है या फिर उसके समक्ष वे गैरयहूदियों के समान पापी नहीं हैं। इस प्रकार स्वयं को सदाचारी समझने वाले यह सच्चाई स्वीकार नहीं कर पाते कि पवित्र परमेश्वर समस्त पाप को देखता है, समस्त पाप से घृणा करता है और समस्त पाप को दंडित करेगा। पौलुस यहाँ यह स्पष्ट करता है कि प्रभु परमेश्वर पाप को तत्काल दंडित नहीं करता, क्योंकि वह अत्यन्त धीरजवान एवं सहनशील है। वह अपने न्याय-दण्ड को इसलिए रोक रखता है कि पापीजन को मन-फिराव का अवसर (समय) मिले, वह अपने पापीपन को पहचाने और प्रभु परमेश्वर को अपना उद्धारकर्ता समझकर उसके पास आए। लेकिन

पापीजन मन-फिराव (पश्चाताप) करने में जितनी अधिक देरी करता है उतना ही अधिक ईश्वरीय प्रकोप बढ़ता जाता है। परमेश्वर के न्याय-दण्ड का समय आने पर, ईश्वरीय मार्ग को अस्वीकार करने वाले, उसके भयावह प्रकोप के भागी होंगे। ऐसे लोगों के लिए यशायाह नबी ने अपनी पुस्तक के तीसवें अध्याय में यह चेतावनी दी है कि ऐसे पाप-प्रेमियों का भरोसा उस दरार पड़ी दीवार पर है जो अचानक ढह जाती है (यशा0 30:12-14)। नूह के समय की जनता ने भी ईश्वरीय न्याय की बात को अस्वीकार किया था, और ईश्वरीय उद्धार-उपाय को अस्वीकार करने के कारण उन पर सहसा महाजल प्रलय रूपी ईश्वरीय प्रकोप प्रकट हुआ।

बेशक, प्रभु परमेश्वर अपनी व्यवस्था से यहूदी और गैरयहूदी दोनों का न्याय करेगा। *“परमेश्वर प्रत्येक मनुष्य को उसके कार्यों के अनुसार फल देगा। जो भले कार्यों की धुन में रह कर महिमा, आदर और अमरता के खोजी हैं, उन्हें वह अनन्त जीवन देगा; परन्तु जो स्वार्थमय अभिलाषाओं के वश में हैं और सत्य को नहीं मानते, वरन् अधर्म को मानते हैं, उन पर प्रकोप और क्रोध पड़ेगा। प्रत्येक मनुष्य पर जो बुरा करता है क्लेश और संकट आएगा, पहले यहूदी पर फिर यूनानी पर, परन्तु प्रत्येक मनुष्य को जो भला करता है, महिमा आदर और शान्ति प्राप्त होगी, पहले यहूदी को और फिर यूनानी को। परमेश्वर किसी का पक्षपात नहीं करता”* (रोमियों 2:6-11)। लोगों के कामों एवं उनके हृदय के विचारों के अनुसार प्रभु परमेश्वर यहूदियों एवं गैरयहूदियों दोनों का व्यवस्था के आधार पर न्याय करेगा। परमेश्वर किसी की तरफदारी (पक्षपात) नहीं करता। यहूदी लोग यह सोचते थे कि यहूदी होने के कारण तथा परमेश्वर की

लिखित व्यवस्था की प्राप्ति के कारण वह लोग उसके न्याय-दण्ड से बच जायेंगे। परन्तु पौलुस ने कहा कि परमेश्वर के समक्ष कोई फर्क नहीं कि हम कौन हैं। व्यवस्था की शर्त थी कि पूर्ण आज्ञापालन का नतीजा अनन्त जीवन है, लेकिन व्यवस्था के किसी भी अंश की अवज्ञा का मतलब ईश्वरीय प्रकोप का भागी होना है। ईश्वरीय व्यवस्था का पूर्णरूपेण पालन ही मनुष्य को परमेश्वर के समक्ष ग्रहणयोग्य बनाता है, उसका ज्ञान मात्र नहीं। क्या पौलुस यह सिखा रहा है कि मनुष्य के लिए व्यवस्था का पूर्ण पालन सम्भव है? नहीं। बिल्कुल नहीं। सारी मानव जाति का आदि पिता आदम था। हम सब पापी पैदा हुए हैं। अर्थात् परमेश्वर को प्रसन्न करने में असमर्थ एवं उसकी आज्ञाओं के पालन में अक्षम। प्रभु परमेश्वर यह जानता है कि उसकी आज्ञाओं के पालन तथा उसे संतुष्ट करने के स्व-प्रयास द्वारा कोई इंसान उसके समक्ष स्वयं को धर्मी नहीं ठहरा सकता। प्रभु यह भी जानता है कि जब तक मनुष्य को उसके द्वारा सिखाया, समझाया एवं कायल नहीं किया जाता तब तक वह अपने पापीपन के प्रति अन्धा बना रहेगा। इसीलिए उसने लिखित रूप में ईश्वरीय व्यवस्था प्रदान किया – मनुष्यों को उनका पापीपन दर्शाने हेतु। रोमियों की पुस्तक के पहले से तीसरे अध्याय तक पौलुस ने इसी सच्चाई को साबित किया है कि सबने ईश्वरीय व्यवस्था का उल्लंघन किया है और परमेश्वर के समक्ष अस्वीकार्य हैं।

*“जिन्होंने बिना व्यवस्था पाप किया, वे बिना व्यवस्था के नाश भी होंगे; और जिन्होंने व्यवस्था पाकर पाप किया, उनका न्याय व्यवस्था के अनुसार होगा; क्योंकि परमेश्वर के समक्ष व्यवस्था के सुननेवाले नहीं, परन्तु व्यवस्था का पालन करनेवाले धर्मी ठहराए*

जाएंगे। फिर जब गैरयहूदी जिनके पास व्यवस्था नहीं, स्वभाव ही से व्यवस्था की बातों का पालन करते हैं, तो व्यवस्था उनके पास न होने पर भी उस दिन वे अपने लिए आप ही व्यवस्था हैं – इस प्रकार वे व्यवस्था के कार्य अपने-अपने हृदय में लिखा हुआ दर्शाते हैं, और उनके विवेक भी साक्षी देते हैं, और उनके विचार कभी उन्हें दोषी या कभी निर्दोष ठहराते हैं – जिस दिन, मेरे सुसमाचार के अनुसार, यीशु मसीह के द्वारा परमेश्वर मनुष्यों की गुप्त बातों का न्याय करेगा” (रोमियों 2:12-16)।

अब पौलुस यह दर्शाता है कि ईश्वरीय व्यवस्था (मूसा की व्यवस्था) का ज्ञान रखने वालों का उस व्यवस्था के आधार पर न्याय होगा, और गैरयहूदियों का न्याय उनकी अन्तरात्मा में पाए जाने वाले (स्थापित) ईश्वरीय ज्ञान के आधार पर होगा। गैरयहूदियों के पास परमेश्वर की लिखित व्यवस्था भले न हो, लेकिन उन पर ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था की सामान्य बातें जाहिर हैं। ईश्वरीय संदेश को सुने बगैर भी लोगों में सही-गलत का संज्ञान होता है। हरेक इंसान में परमेश्वर ने इतना स्वाभाविक ज्ञान प्रदान किया है कि वह सही-गलत का फर्क समझने लगता है। लेकिन सवाल यह है कि सही-गलत का अन्तर जानने के बावजूद भी क्या हम सदैव सही को मानते हैं और गलत से दूर रहते हैं? नहीं! हम जानबूझकर अवज्ञा (असत्य) का मार्ग अपनाते हैं। दुनिया की प्रत्येक जाति या वर्ग के प्रत्येक इंसान ने अपने अंदर सृष्टिकर्ता की ओर से दी गई इस आन्तरिक व्यवस्था का उल्लंघन किया है। अन्तिम न्याय-दण्ड के दिन प्रभु परमेश्वर इस सच्चाई को पूर्णतः बेपर्द करेगा कि प्रत्येक मनुष्य की आन्तरिक अभिलाषा स्वार्थपूर्ण एवं दुष्टतापूर्ण रही है।

“परन्तु यदि तू ‘यहूदी’ कहलाता है, और व्यवस्था पर भरोसा रखता तथा परमेश्वर पर गर्व करता है, और उसकी इच्छा को जानता और व्यवस्था में शिक्षित होकर उन बातों का समर्थन करता है जो अनिवार्य हैं, और अपने आप पर इस बात का भरोसा रखता है कि तू स्वयं अंधों का पथ-प्रदर्शक, अंधकार में रहने वालों के लिए ज्योति, निर्बुद्धियों को समझाने वाला, बालकों का शिक्षक है, क्योंकि तुझे व्यवस्था में ज्ञान और सत्य का स्वरूप प्राप्त हुआ है, तू जो दूसरों को शिक्षा देता है, क्या स्वयं नहीं सीखता? तू जो चोरी न करने का उपदेश देता है, क्या स्वयं चोरी नहीं करता? तू जो कहता है कि व्यभिचार नहीं करना चाहिए, क्या स्वयं भी व्यभिचार नहीं करता? तू जो मूर्तियों से घृणा करता है, क्या स्वयं ही मंदिरों को नहीं लूटता? तू जो व्यवस्था पर गर्व करता है, क्या तू व्यवस्था का उल्लंघन करके परमेश्वर का अनादर नहीं करता? क्योंकि लिखा भी है, ‘तुम्हारे कारण परमेश्वर के नाम की निन्दा गैरयहूदियों में की जाती है’। क्योंकि यदि तुम व्यवस्था पर चलते हो, तो अवश्य ही ख़तने से लाभ है, परन्तु यदि तुम व्यवस्था का उल्लंघन करने वाले हो, तो तुम्हारा ख़तना, ख़तनारहित होने के समान ठहरा। इसलिए यदि ख़तनारहित व्यक्ति व्यवस्था के नियमों का पालन करे तो क्या उसका ख़तनारहित होना ख़तने के समान नहीं माना जाएगा? और वह मनुष्य जो शारीरिक रूप से ख़तनारहित है, यदि व्यवस्था पर चलता है, तो क्या वह तुझे जो लिखित व्यवस्था पाने और ख़तना किए जाने पर भी व्यवस्था का उल्लंघन करता है, दोषी न ठहराएगा? क्योंकि जो प्रकट में यहूदी है, वह यहूदी नहीं, न ही वह ख़तना, ख़तना है जो बाह्य या देह में



हो। परन्तु यहूदी वही है जो मन से है; खतना वही है जो आत्मा के द्वारा हृदय का है, न कि लेख के द्वारा; और उसकी प्रशंसा मनुष्यों की ओर से नहीं, वरन् परमेश्वर की ओर से होती है” (रोमियों 2:17-29)।

गैरयहूदियों और नैतिकतावादी लोगों के दोष को दर्शाने के बाद, पौलुस ने उन लोगों को भी प्रभु परमेश्वर के समक्ष अस्वीकार्य सिद्ध किया है जो स्वयं को धार्मिक (यहूदी) समझते हैं। इसलिए पौलुस यह प्रश्न करता है : “तो क्या हुआ? क्या हम उनसे अच्छे हैं? कदापि नहीं; क्योंकि हम यहूदियों और यूनानियों दोनों पर दोष लगा चुके हैं कि वे सब के सब पाप के वश में हैं; जैसा कि लिखा है, ‘कोई धर्मी नहीं, एक भी नहीं’” (रोमियों 3:9-10)। क्या यहूदी लोग गैरयहूदियों से बेहतर (धर्मी) हैं? नहीं! दोनों में से किसी ने भी ईश्वरीय व्यवस्था का पूर्णरूपेण पालन नहीं किया है। सभी पापी हैं, और परमेश्वर के समक्ष दोषी हैं।

## चार

इससे पूर्व, पौलुस ने यह बात स्पष्ट कर दिया है कि चाहे यहूदी हो अथवा गैरयहूदी हो, परमेश्वर की व्यवस्था का पूर्णरूप से पालन कोई नहीं कर सकता। नतीज़तन, परमेश्वर के समक्ष सब लोग अधर्मी (दोषी) हैं और न्यायसंगत तौर पर उसके समक्ष दण्डनीय हैं। इसके बाद पौलुस ने सारी मानव जाति को पापी दर्शाते हुए परमेश्वर के समक्ष दोषी ठहराया है। “अब हम जानते हैं कि व्यवस्था जो कुछ कहती है, उन्हीं से कहती है जो व्यवस्था के अधीन हैं, इसलिए कि प्रत्येक मुंह बन्द किया जाए और समस्त संसार परमेश्वर को लेखा देने वाला ठहरे” (रोमियों 3:19)।

मान लीजिए कि रात में आपके घर एक चोर घुस आया और आपने उसे चोरी करते हुए पकड़ लिया। स्वयं को निर्दोष साबित करने के लिए वह क्या कह सकता है? क्या उसका यह तर्क सही होगा कि उसने चोरी नहीं की? नहीं। स्वयं को निर्दोष साबित करने के लिए ऐसा व्यक्ति कुछ नहीं कह सकता। उसे तो सिर्फ अपना सिर नीचा करके चुप रहना होगा। परमेश्वर के समक्ष, पापी मनुष्य की भी यही दशा है। हम दोषी हैं, और स्वयं को निर्दोष साबित करने के लिए हमारे पास कोई भी तर्क (जवाब) शेष नहीं है।

प्रभु परमेश्वर की व्यवस्था के आधार पर सारी मानव जाति उसके समक्ष पापी साबित हो चुकी है। यद्यपि गैरयहूदी लोग लिखित रूप में ईश्वरीय व्यवस्था नहीं पाए थे, तथापि परमेश्वर ने सभी मनुष्यों को अपना ज्ञान प्रदान किया था, अर्थात् सही एवं गलत का ज्ञान मनुष्य के विवेक में था, और इस प्रकार मनुष्य के पास कोई

बहाना नहीं है। इसके अतिरिक्त, गैरयहूदी लोग जानबूझकर प्रभु परमेश्वर से विमुख रहे हैं और ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन किए हैं।

तो यहूदियों की क्या दशा है? क्या उनकी हालत फर्क है? उनके पास परमेश्वर की लिखित व्यवस्था थी, और वे इसे (दूसरों को) सिखाते भी रहे। लेकिन स्वयं उसका (पूर्ण) पालन करने में असफल रहे। अतः पौलुस ने सारी मानव जाति को परमेश्वर के समक्ष दोषी एवं दण्डनीय सिद्ध किया है। हममें से प्रत्येक जन प्रभु परमेश्वर के समक्ष निरुत्तर एवं दोषी है। अपने आप को निर्दोष (धर्मी) बनाने के लिए मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। प्रत्येक जन परमेश्वर के समक्ष पापी है।

*“क्योंकि उसकी दृष्टि में कोई प्राणी व्यवस्था के कार्यों से धर्मी नहीं ठहरेगा, क्योंकि व्यवस्था के द्वारा पाप का बोध होता है”* (रोमियों 3:20)। हाँ, व्यवस्था (पालन) किसी को (मुक्ति प्रदान करके) नहीं बचा सकती। क्योंकि इसका पूर्णरूपेण पालन कोई नहीं कर सकता। बहरहाल, प्रभु परमेश्वर ने व्यवस्था इसलिए प्रदान किया ताकि हमारा पापीपन बेपर्दा हो जाए और उद्धारकर्ता की आवश्यकता का ज्ञान हो। व्यवस्था यह दर्शाती है कि हम पिता परमेश्वर की इच्छा के अनुरूप आचरण करने में अनिच्छुक एवं असमर्थ हैं।

अब सवाल यह है कि पवित्र, धर्मी एवं न्यायी परमेश्वर अधर्मी (पापियों) को कैसे ग्रहण कर सकता है? क्या परमेश्वर के समक्ष स्वयं को ग्रहणयोग्य बनाने के लिए हम स्वयं कुछ कर सकते

हैं? नहीं। अपने समक्ष पापी मनुष्य को ग्रहणयोग्य बनाने के लिए केवल पवित्र परमेश्वर ही कुछ (उपाय) कर सकता है। जरा प्राचीन इतिहास की ओर ध्यान दें! क्या परमेश्वर के बताए उपाय बगैर जल-प्रलय से बचने के लिए नूह स्वयं कुछ कर सकता था? क्या इस्राएली लोग स्वयं को मिस्र की गुलामी से बचा सकते थे? क्या वे मरुभूमि की यात्रा के दौरान अपने लिए भोजन व जल का प्रबन्ध कर सकते थे? क्या महामच्छ द्वारा निगले जाने पर योना स्वयं को बचा सकता था? इनमें मैं कोई भी जन स्वयं को नहीं बचा सकता था। केवल प्रभु परमेश्वर ने ही इन्हें बचाया। यही बात संसार के सारे मनुष्यों के लिए सच है। कोई भी मनुष्य स्वयं को बचा कर प्रभु परमेश्वर के समक्ष ग्रहणयोग्य नहीं बना सकता। परन्तु जैसे उसने नूह के लिए, इस्राएलियों के लिए तथा योना के लिए अद्भुत उपाय किया, उसी प्रकार प्रभु परमेश्वर ने हम अधम पापियों के उद्धार के लिए भी एक अद्भुत उपाय किया, जिससे कि हम उसकी दृष्टि में ग्रहणयोग्य हो सकें और इस प्रकार परमेश्वर-प्रदत्त उद्धार को प्राप्त करें।

*“किन्तु अब व्यवस्था से पृथक परमेश्वर की धार्मिकता प्रकट हुई है, जिसकी साक्षी व्यवस्था और नबी देते हैं” (रोमियों 3:21)।* परमेश्वर की दृष्टि में ग्रहणयोग्य होने हेतु हमें जो धार्मिकता (रास्तबाजी, righteousness) उपलब्ध है उसका हमारे कार्यों और (मूसा की) व्यवस्था के पालन से कोई लेना-देना नहीं है। प्रभु परमेश्वर की दृष्टि में ग्रहणयोग्य होने के लिए मनुष्य को जिस न्यायसंगत एवं धार्मिकतापूर्ण (निर्दोष) अवस्था की आवश्यकता है वह

हमारे किसी कर्म-प्रयास अथवा ईश्वरीय व्यवस्था के पालन से नहीं प्राप्त होती। यह न्यायसंगत या धार्मिकतापूर्ण अवस्था तथा परमेश्वर के समक्ष स्वीकार्यता, पापी मनुष्य के लिए पिता परमेश्वर की ओर से अमूल्य उपहार स्वरूप प्रदान की गई है।

क्या आपको याद है कि जब आदम और हव्वा ने पाप किया तो क्या हुआ? वे अपनी नग्नता को अंजीर के पत्तों से ढकने की कोशिश किए, जैसे कि प्रायः हम भी अपने भले कार्यों के द्वारा अपने पापीपन पर पर्दा डालने की कोशिश करते हैं। क्या पिता परमेश्वर ने उनके 'पत्तों' को ग्रहण किया? नहीं। क्या वह हमारे पाप को ढकने वाले हमारे (सु) कर्म रूपी प्रयास को ग्रहण करता है? नहीं। आदम और हव्वा को प्रभु परमेश्वर की दृष्टि में ग्रहणयोग्य वस्त्र पहिनाने के लिए क्या जरूरी था? एक निर्दोष पशु-बलि। आदम और हव्वा को स्वर्गिक दृष्टि में ग्रहणयोग्य वस्त्र प्रदान करने हेतु परमेश्वर ने एक पशु-बलि किया। इसी प्रकार उसने हमारा दोष-दण्ड वहन करने हेतु अपने "एकलौते पुत्र" को हमारे बदले मरने (बलि होने) भेजा, ताकि हम उसकी धार्मिकता (रास्तबाजी, righteousness) से विभूषित हो जाएं। जब यीशु मसीह ने हमारे दोष-दण्ड को अपने ऊपर लिया, तब पिता परमेश्वर ने हमें उसकी धार्मिकता प्रदान किया। इसका मतलब यह नहीं कि अब हम पापी नहीं रहे, बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि अब प्रभु परमेश्वर के न्याय-दण्ड से हमें छुटकारा मिल गया है, क्योंकि मसीह यीशु हमारे दोष-दण्ड को वहन कर चुका है। अब हमें परमेश्वर की धार्मिकता और उसकी दृष्टि में स्वीकार्यता प्रदान की गई है। *"अर्थात् परमेश्वर की वह धार्मिकता जो यीशु मसीह में विश्वास के द्वारा सब विश्वास करने वालों के लिए है"*

(रोमियों 3:22)। यद्यपि परमेश्वर की व्यवस्था हम सबको दोषी ठहराती है, तथापि उसने एक ऐसा उपाय (प्रबन्ध) किया है जिसके द्वारा प्रत्येक जन परमेश्वर की दृष्टि में निर्दोष एवं धर्मी हो सकता है। यह केवल प्रभु यीशु के द्वारा ही सम्भव है।

“इसलिए कि सब ने पाप किया है और परमेश्वर की महिमा से रहित हैं” (रोमियों 3:23)। वह ईश्वरीय धार्मिकता जो हमें परमेश्वर के समक्ष ग्रहणयोग्य बनाती है, वह पिता परमेश्वर की दया एवं उसके अनुग्रह से, हमें मुफ्त उपहार के रूप में प्रदान की गयी है, (जबकि) हम इसके योग्य नहीं हैं। क्या आपको वह घटना याद है जबकि प्रभु परमेश्वर ने अपने विरुद्ध इस्राएलियों के पाप के कारण उन्हें डंसने के लिए सर्प भेजे थे? सर्पों से आतंकित होकर जब परमेश्वर से वे दया व सहायता की याचना करने लगे तब प्रभु परमेश्वर ने मूसा से कहा कि वह पीतल का एक सर्प बना कर एक खम्भे पर लटका दे। परमेश्वर ने कहा कि सर्प से डंसा गया कोई भी व्यक्ति जब खम्भे पर लटकाए गए उस पीतल के सर्प की ओर देखेगा तब प्रभु परमेश्वर उसे क्षमा व चंगा कर देगा (गिन0 21:5-9)।

क्या इस घटना से सम्बन्धित इस्राएली लोग सर्पों से बचाए जाने और परमेश्वर की दया दृष्टि के काबिल थे? नहीं। अपने घिनौने पाप के कारण वह लोग मृत्यु-दण्ड के काबिल थे। वह लोग परमेश्वर के विरुद्ध पाप किए थे। लेकिन अपने अनुग्रह में प्रभु परमेश्वर ने उनके बचने के लिए एक उपाय किया। बियावान के इन इस्राएलियों की भांति हममें से कोई भी इस लायक नहीं कि प्रभु परमेश्वर की दया से हमें छुटकारा मिले। परन्तु प्रभु यीशु के कारण

वह प्रत्येक विश्वासी को अपनी धार्मिकता पहनाता है : “वे उसके अनुग्रह ही से उस छुटकारे के द्वारा जो मसीह यीशु में है, संतमेंत धर्मी ठहराए जाते हैं” (रोमियों 3:24)।

मसीह यीशु के विमोचक कार्य द्वारा हमारे लिए ईश्वरीय धार्मिकता प्रदान की गई। पौलुस के समय के संसार के अधिकतर भूभाग पर रोमन लोगों का अधिकार था। वे जिस क्षेत्र पर अधिकार करते थे, वहाँ के लोगों में से गुलाम रखते थे। गुलाम लोगों को एक बाजार में लाकर सबसे ऊँचा दाम लगाने वाले के हाथ बेंच दिया जाता था। इस प्रकार की दासप्रथा में गुलामों को जंजीर से बांध कर बाजार में बेचा जाता था। वह न तो भाग सकते थे। और न ही छुटकारा पा सकते थे।

आदम द्वारा प्रभु परमेश्वर की अवज्ञा के कारण, हम भी पाप व शैतान की गुलामी में पैदा हुए और इससे मुक्ति की कोई आशा नहीं थी। रोमन गुलाम-बाजारों की तरह हम भी इस दुनियां रूपी गुलाम-बाजार में (पाप व शैतान के) गुलाम थे। बहरहाल, मसीह यीशु ने इस दुनिया रूपी गुलाम-बाजार में आकर हमें अपने लिए खरीद लिया। हमारे छुटकारे के मूल्य के रूप में उसने ‘अपना निष्कलंक लहू’ रूपी दाम चुकता किया। उसने हमें वापस खरीद कर, पाप व शैतान की अधीनता से मुक्त कर दिया। अब हमें फिर कभी ‘गुलाम-बाजार’ में वापस नहीं जाना होगा।

केवल मसीह यीशु की मृत्यु ही हमें परमेश्वर की धार्मिकता प्रदान करती है जिसके द्वारा परमेश्वर हमें ग्रहण कर सकता है। तो फिर यीशु के आगमन से पूर्व (अर्थात् पुराना नियम काल) के

विश्वासियों का क्या हुआ? क्या हाबिल, नूह, अब्राहम, इसहाक और याकूब भी प्रभु परमेश्वर द्वारा ग्रहण किए गए? यह कैसे संभव है? क्या पशु-बलि रूपी चढ़ावों के द्वारा वे ग्रहण किए गये? क्या पशुओं का लहू मनुष्य के पाप को दूर कर सकता है? उन्हें पशु-बलि चढ़ाने की जरूरत ही क्यों थी? इस्राएलियों को प्रभु परमेश्वर ने ऐसा ही करने का आदेश दिया था। यह हमारे पापों के बदले में मसीह यीशु के बलिदान द्वारा मिलने वाली उत्तम आशिषों का प्रतीक (पूर्वाभास/प्रतिछाया) था। प्रतिज्ञात् उद्धारकर्ता भेजने के बारे में ईश्वरीय वायदे पर भरोसा रखने के द्वारा वे विश्वास से धर्मी ठहराए गये। प्रतिज्ञात् उद्धारकर्ता के भेजे जाने तक परमेश्वर के वचन (वायदे) पर आशा-भरोसा रखने के कारण उन्हें प्रभु परमेश्वर ने धार्मिकता रूपी पुरस्कार प्रदान किया (इब्रा0 10:4; इब्रा0 10:1) *“उसी को परमेश्वर ने उसके लहू में विश्वास के द्वारा प्रायश्चित ठहराकर खुल्लम खुल्ला प्रदर्शित किया। यह उसकी धार्मिकता को प्रदर्शित करने के लिए हुआ, क्योंकि परमेश्वर ने अपनी सहनशीलता में, पहिले किए गये पापों को भुला दिया”* (रोमियों 3:25)।

जब यीशु मसीह क्रूस पर मरा तब उसकी मृत्यु ने सब मनुष्यों के पापों का दण्ड-मूल्य चुकाया (सब समय के सब मनुष्यों के पापों का दण्ड-मूल्य चुकाया (अर्थात् भूत, वर्तमान और भविष्यकाल के सब लोगों व सब मनुष्यों के पापों का दण्ड-मूल्य)। यीशु मसीह के जन्म से पूर्व अर्थात् **पुराना नियम** काल के समय भी पिता परमेश्वर यह जानता था कि उसका “एकलौता पुत्र” संसार के लोगों के पापों के बदले मरने के लिए इस धरती पर अवतरित



होगा। उसने यह सच्चाई मानव जाति के लिए एक वायदे के रूप में प्रदान की थी। जब कोई जन इस प्रतिज्ञात उद्धारकर्ता के बारे में दिए गये वायदे पर विश्वास करता था, तो प्रभु परमेश्वर उसे ईश्वरीय धार्मिकता प्रदान करके ग्रहण करता था (जैसे कि ऐसा हो चुका हो, क्योंकि परमेश्वर के समय एवं उसकी शैली में यह वायदा तो पूरा ही होना था)। *“यह उसने इसलिए किया कि वर्तमान समय में उसकी धार्मिकता प्रदर्शित हो, कि वह स्वयं ही धर्मी ठहरे और उसका भी धर्मी ठहराने वाला हो जो यीशु पर विश्वास करता है”* (रोमियों 3:26)। हमारे पापों के बदले मसीह की मृत्यु पर विश्वास करने से पूर्व हम भी नरक के दण्ड के योग्य थे। हम परमेश्वर के द्वारा अपनाए जाने के योग्य नहीं थे। यीशु मसीह की मृत्यु पर भरोसा करने के कारण, अब हम परमेश्वर द्वारा ग्रहण किए जाने के योग्य हो गए हैं; क्योंकि उसकी मृत्यु द्वारा हमारे पापों के दोष-दण्ड का पूर्णरूपेण भुगतान किया गया। अतः अब प्रभु परमेश्वर न्यायोचित ढंग से हमें ग्रहण करता है।

हमारा उद्धार प्रभु परमेश्वर की ओर से एक मुफ्त उपहार के रूप में मिला है, इसलिए इसमें घमण्ड का कोई स्थान नहीं है। प्रभु ने हमारे लिए जो कुछ किया है उस पर विश्वास करना एवं उसे विश्वासपूर्वक अपनाना मात्र ही हमारी भूमिका है। यह उपहार प्राप्त करने के लिए हमने कुछ नहीं किया। हम तो सिर्फ प्रभु परमेश्वर को धन्यवाद दे सकते हैं और उसकी स्तुति प्रशंसा कर सकते हैं। *“अतः गर्व करना कहाँ रहा? वह तो रहा ही नहीं। किस प्रकार की व्यवस्था से? कर्मों की व्यवस्था से? नहीं, परन्तु विश्वास की*

व्यवस्था से। इसलिए हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि मनुष्य व्यवस्था के कामों से नहीं, वरन् विश्वास के द्वारा धर्मी ठहराया जाता है” (रोमियों 3:28)।

“या परमेश्वर केवल यहूदियों ही का परमेश्वर है? क्या वह ग़ैरयहूदियों का भी परमेश्वर नहीं? हाँ, ग़ैरयहूदियों का भी है – वास्तव में यदि परमेश्वर एक ही है – तो वह खतना वालों को विश्वास से तथा खतनारहितों को भी विश्वास ही के द्वारा धर्मी ठहराएगा” (रोमियों 3:29-30)। प्रभु परमेश्वर विभिन्न लोगों को विभिन्न प्रकार का उद्धार नहीं देता। यहूदियों और ग़ैरयहूदियों के लिए केवल एक ही उद्धार-मार्ग है। गोरे-काले, धनी-गरीब या स्त्री-पुरुष के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार का उद्धार नहीं है। सारे मनुष्यों के लिए एक ही प्रकार का ईश्वरीय उद्धार मार्ग है – वह चाहे जिस स्थान और जिस समय के हों।

प्रभु परमेश्वर ने अपनी पवित्र व्यवस्था के न्यायसंगत (धार्मिकतापूर्ण) तकाज़े की मर्यादा को बनाये रखा (अर्थात् उसकी पुष्टि किया) “तो क्या हम विश्वास के द्वारा व्यवस्था को विफल करते हैं? कदापि नहीं! इसकी विपरीत, हम व्यवस्था को दृढ़ करते हैं” (रोमियों 3:31)। मसीह यीशु की मृत्यु में ईश्वरीय न्याय-व्यवस्था की संतुष्टि हुयी (अर्थात् पूर्ण प्रायश्चित हुआ)। हमारे पाप के कारण (ईश्वरीय) व्यवस्था के अनुसार हम मृत्यु-दण्ड के हवाले थे। इसीलिए, पिता परमेश्वर ने अपने “एकलौते पुत्र” को भेजा कि वह हमारे दोष-दण्ड को अपने ऊपर लेकर हमारे बदले मरे। ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार परमेश्वर सिर्फ उन्हीं को ग्रहण कर सकता है

जो पूर्णरूपेण धर्मी (निर्दोष) हों। अतः परमेश्वर ने हमें ईश्वरीय धार्मिकता रूपी वस्त्र पहनाने का अनुग्रहपूर्ण प्रबन्ध किया। परमेश्वर की व्यवस्था की मांग पूरा होना अनिवार्य था। हमारे बदले उसकी व्यवस्था के तकाजे को मसीह यीशु ने अपनी मृत्यु के द्वारा विधिवत् पूर्ण किया। नतीजतन, अब हम परमेश्वर के समक्ष धर्मीजन की तरह स्वीकार्य हैं।

अब **रोमियों** के चौथे अध्याय में दो पापी मनुष्यों का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है जो विश्वास द्वारा धर्मी ठहराये गये, अपने किसी कार्य के कारण नहीं – अर्थात् अब्राहम और दाऊद का उदाहरण। *“तो हम इब्राहीम के विषय में क्या कहें जो शरीर के अनुसार हमारा पूर्वज है? उसे क्या प्राप्त हुआ? क्योंकि यदि इब्राहीम कर्मों के द्वारा धर्मी ठहराया जाता, तो उसे गर्व करने का कुछ कारण होता, परन्तु परमेश्वर के समक्ष नहीं। पवित्रशास्त्र क्या कहता है? ‘और इब्राहीम ने परमेश्वर पर विश्वास किया, और यह उसके लिए धार्मिकता गिना गया”* (रोमियों 4:1-3)। हाँ, यहाँ अब्राहम और दाऊद का जिक्र है जिनका यहूदी इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। यहूदियों की दृष्टि में, यदि कोई अपने धर्म-कर्म से उद्धार पाने योग्य था तो अब्राहम। किन्तु पौलुस ने अब्राहम के बारे में क्या कहा है? क्या अब्राहम अपने सुकर्म के बल पर परमेश्वर को स्वीकार्य था? अब्राहम को उसके अपने देश से बाहर बुलाकर प्रभु परमेश्वर एक नये देश में ले गया। तब प्रतिज्ञात् उद्धारकर्ता के बारे में उससे वायदा किया। अब्राहम ने परमेश्वर की बात पर विश्वास किया, क्योंकि वह जानता था कि परमेश्वर कभी झूठ नहीं बोलेगा। यहाँ

यह नहीं भूलना है कि अब्राहम भी एक पापी था, लेकिन परमेश्वर ने उसे एक निर्दोष की तरह ग्रहण किया। (अर्थात् धर्मी ठहराया, क्योंकि उसने परमेश्वर के वायदे पर भरोसा किया)। हाँ, उसके किसी सुकर्म के कारण नहीं, बल्कि परमेश्वर के वचन पर उसके विश्वास के कारण। अब्राहम को एक धर्मी के रूप में देखना, परमेश्वर की ओर से एक मुफ्त उपहार था – पूर्णतः अनार्जित (उत्प0 15:6)।

*“अब उसे जो काम करता है मजदूरी देना कृपा नहीं परन्तु अधिकार माना जाता है। परन्तु वह जो काम नहीं करता, वरन् उस पर विश्वास करता है जो भक्तिहीन को धर्मी ठहराता है, उसका विश्वास धार्मिकता गिना जाता है”* (रोमियों 4:4-5)। जब हम कोई काम करते हैं और उस काम के बदले कोई भुगतान (मजदूरी) पाते हैं तो वह पुरस्कार होता है या पारिश्रमिक? पारिश्रमिक (मजदूरी)। आपने कठिन परिश्रम किया और उस परिश्रम के बदले आपको पारिश्रमिक (मजदूरी) मिलना आपका हक था। उस पारिश्रमिक को आपने अर्जित किया यानि अपनी मजदूरी कमाई। क्या परमेश्वर के यहाँ स्वीकार्य होना ऐसा ही है? क्या हम अपने कार्य, व्यवहार से उसकी स्वीकार्यता के लायक हैं? क्या हम अपनी धर्म-कमाई के कारण उसके समक्ष स्वीकार्य किए गये हैं? नहीं। पापी मनुष्य का परमेश्वर के समक्ष स्वीकार्य होना एक वरदान है, केवल ईश्वरीय अनुग्रह की देन। इसीलिए पौलुस ने इसके बाद दाऊद के प्रलेखों का उद्धरण देकर इस संदर्भ में उसके विचार को प्रस्तुत किया है :  
*“जिस प्रकार दाऊद भी उस मनुष्य को धन्य कहता है जिसे*

परमेश्वर कर्मों के बिना धर्मी गिनता है : 'धन्य हैं वे जिनके अपराध क्षमा हुए, और जिन के पाप ढांपे गए। धन्य है वह मनुष्य जिसके पाप का लेखा प्रभु नहीं लेगा' (रोमियों 4:6-8)।

पौलुस बिल्कुल स्पष्ट कर देता है कि परमेश्वर के समक्ष अब्राहम और दाऊद केवल विश्वास के द्वारा (धर्मी) स्वीकार्य हुए। रोचक है कि पौलुस प्रेरित इन दोनों का जिक्र करता है – यहूदियों में अब्राहम को एक धर्मीजन का प्रतीक समझा जाता था, और दाऊद का पाप यहूदियों में सर्वविदित था। यदि "परमेश्वर का मित्र" (याकूब 2:23) एवं यहूदियों के सबसे प्रमुख कुलपिता को सुकर्मों के द्वारा परमेश्वर के समक्ष स्वीकार्यता नहीं मिली, और 'परमेश्वर के विरुद्ध पाप करने वाला' (भज0 51:4) एवं यहूदियों में (व्यभिचार रूपी) अपने पाप के लिए चर्चित व्यक्ति (दाऊद) का परमेश्वर के समक्ष विश्वास से ग्रहण किया जाना यह दर्शाता है कि प्रभु यीशु द्वारा सम्पन्न किए गये उद्धार-कार्य पर विश्वास में ही हम पापियों के लिए आशा है।

## पाँच

“इसलिए विश्वास से धर्मी ठहराए जाकर परमेश्वर से हमारा मेल अपने प्रभु यीशु मसीह के द्वारा है” (रोमियों 5:1)। पाप के कारण हमारे प्रति जो ईश्वरीय क्रोध था, वह परमेश्वर के समक्ष धर्मी-स्वरूप स्वीकार्य होने के कारण, समाप्त हो चुका है? स्मरण करें कि अपने पाप के कारण आदम-हव्वा अदन की वाटिका से बाहर कर दिए गये थे। अर्थात् ईश्वरीय सहभागिता एवं स्वीकार्यता रूपी सामीप्य खो बैठे थे। प्रभु यीशु को अपना उद्धारकर्ता पहचानने-अपनाने से पूर्व हमारी भी परमेश्वर के समक्ष यही दशा थी (यशा0 59:2)। परन्तु हमारे बदले ख्रीष्ट की मृत्यु के कारण परमेश्वर सब समय हमें पूर्णतः ग्रहण करता है, क्योंकि मसीह यीशु हमारे पापों का दण्ड-मूल्य पूर्णरूपेण चुकता कर चुका है। हमें हमारे पापों की क्षमा प्राप्त हो चुकी है, और जैसे मसीह यीशु परमेश्वर के समक्ष स्वीकार्य है उसी प्रकार हम भी। मसीह यीशु की मृत्यु एवं पुनरुत्थान के द्वारा पिता परमेश्वर हमें स्वर्गिक (ईश्वरीय) धार्मिकता पहिनाया है।

“उसी के द्वारा विश्वास से, उस अनुग्रह में जिसमें हम स्थिर हैं, हमने प्रवेश पाया है, और परमेश्वर की महिमा की आशा में हम आनन्दित होते हैं” (रोमियों 5:2)। जैसे मसीह यीशु सदैव पिता परमेश्वर के प्रेम एवं स्वीकार्यता का पात्र है, उसी प्रकार हम भी परमेश्वर के प्रेम एवं स्वीकार्य के पात्र हो गये हैं, क्योंकि उसने हमें अपनी धार्मिकता से विभूषित किया है (इफि0 1:6)। अब हमारे प्रति इस ईश्वरीय दृष्टिकोण (परमेश्वर के साथ इस सम्बन्ध) को कुछ भी

नहीं बदल सकता, यहाँ तक कि हमारा कोई पाप-कर्म भी नहीं। लेकिन क्या इसका मतलब यह है कि अब जब हम पाप करते हैं तो परमेश्वर इसकी उपेक्षा (परवाह नहीं) करता है? नहीं! परमेश्वर हमारे वर्तमान पाप-कर्मों की भी परवाह करता है, और इसके बारे में हम आगे और भी सीखेंगे। बहरहाल, अभी यह जानना-समझना महत्वपूर्ण है कि अब जब हम कोई पाप या गलती कर देते हैं तब भी परमेश्वर के समक्ष स्वीकार्य हैं, क्योंकि हमें मसीह की धार्मिकता रूपी आवरण पहिनाया गया है। इस स्वीकार्यता या ग्रहणयोग्यता को कुछ भी नहीं बदल सकता। इस अमूल्य स्वीकार्यता रूपी उपहार को इस क्षण भी विश्वास के द्वारा अपनाया जा सकता है। हम इस क्षण भी परमेश्वर के समक्ष पूर्ण स्वीकार्यता रूपी इस वरदान का आनन्द ले सकते हैं। परमेश्वर के साथ सुसंगति रूपी यह सुअवसर एवं अमूल्य वरदान प्रभु के विश्वासी के लिए निरन्तर उपलब्ध है। भावीकाल में वह समय भी आने वाला है जबकि हम स्वर्ग में सर्वदा उसके साथ होंगे।

बेशक, यह सुनिश्चित है कि मसीह यीशु का विश्वासीजन परमेश्वर के समक्ष स्वीकार्य है और एक दिन उसके साथ स्वर्ग में होगा। लेकिन इस धरती पर विश्वासी के जीवन में आने वाले संघर्ष, दुःख-दर्द व समस्याओं के बारे में क्या कहा जाए? हाँ, प्रभु के लोगों को भी दुःख, मुसीबत, परीक्षाओं एवं सतावटों का अनुभव करना पड़ता है। पवित्र बाइबल के अनुसार, प्रभु के विश्वासियों के जीवन में इस प्रकार की कठिनाइयों का आना कोई अप्रत्याशित बात नहीं है (प0 पत0 2:21)। स्मरण रहे कि इस धरती पर रहते हुए प्रभु यीशु

को भी अनेक मुसीबतों व कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। प्रारम्भिक कलीसिया को घोर उत्पीड़न सहना पड़ा। पौलुस को मारा-पीटा गया, समुद्री यात्राओं के दौरान गम्भीर खतरों से होकर गुजरना पड़ा, पथराव सहना पड़ा, जेल जाना पड़ा और एक जगह से दूसरी जगह भागना पड़ा। अतः पौलुस अन्य विश्वासियों को भी यह चेतावनी देता है कि इस दुनियां में रहते हुए दुःख-मुसीबतों को सहने के लिए तैयार रहना है। साथ ही साथ वह इस सच्चाई को भी स्पष्ट कर देता है कि दुःख-मुसीबतों के द्वारा परमेश्वर पर हमारा विश्वास और अधिक सुदृढ़ किया जाता है। आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यकताग्रस्तता अनिवार्य है।

*“इतना ही नहीं, परन्तु हम अपने क्लेशों में भी आनन्दित होते हैं, क्योंकि यह जानते हैं कि क्लेश में धैर्य उत्पन्न होता है”* (रोमियों 5:3)। यहाँ पौलुस हमें यह सिखा रहा है कि विश्वासी को अपने जीवन में परमेश्वर के संज्ञान में भेजी गई परीक्षाओं (कठिनाइयों) को सहर्ष स्वीकार करना चाहिए, क्योंकि इससे धैर्य व सहनशीलता बढ़ती है (याकूब 1:2-4)। जब सब कुछ सरल, सामान्य व ठीक रहता है तब हम अपने जीवन में परमेश्वर की आवश्यकता की उपेक्षा करने लगते हैं और उसे भूलने लगते हैं। कठिनाइयां, परीक्षाएं और उत्पीड़न हमें परमेश्वर पर आश्रित रहने की दिशा में ले जाते हैं। *“धैर्य से खरा चरित्र, और खरे चरित्र से आशा उत्पन्न होती है”* (रोमियों 5:4)। ऐसा प्रतीत होता है कि परीक्षाएं और असफलताएं आध्यात्मिक विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक सामग्रियां हैं। जीवन की कठिन परिस्थितियों के द्वारा जब हम



परमेश्वर पर अधिकाधिक आशा-भरोसा रखने में बढ़ते हैं, तब उसकी भलाई और उसके अटल प्रेम की प्रगाढ़ता को भी पहिचानने लगते हैं (इफि० 3:18-19)। इससे हम उसके साथ शाश्वत काल तक जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार किए जाते हैं, और उसके पास जाने के लिए तैयार रहते हैं। *“आशा से लज्जा नहीं होती, क्योंकि पवित्र आत्मा जो हमें दिया गया है, उसके द्वारा परमेश्वर का प्रेम हमारे हृदयों में उंडेला गया है”* (रोमियों 5:5)। पार्थिव जीवन की कठिनाइयों के बावजूद जैसे-जैसे हम परमेश्वर पर आश्रित जीवन में बढ़ते जाते हैं और स्वर्ग में उसके साथ निवास करने की आशापूर्ण जिन्दगी जीते हैं, वैसे वैसे अन्तर्वासी पवित्र आत्मा हमें यह सिखाता रहता है कि यह ईश्वरीय आशा सच्ची है और वास्तव में ऐसा ही होगा। पवित्र आत्मा हमें यह भी सिखाता है कि इस संसार की परीक्षाओं, प्रलोभनों एवं कठिनाइयों के बावजूद प्रभु परमेश्वर हमसे प्रेम रखता है और जब तक हमें स्वर्गिक निवास में नहीं बुलाता वह हमारे साथ है, और हमें कभी नहीं त्यागेगा। *“जब हम निर्बल ही थे तब ठीक समय पर मसीह भक्तिहीनों के लिए मरा”* (रोमियों 5:6)। परमेश्वर की प्रत्येक संतान को इस सच्चाई की आड़ में जीना सीखना है कि उसके प्रति प्रभु परमेश्वर का प्रेम सदैव अटल एवं अपरिवर्तनीय है। यह हमारे लिए महान प्रोत्साहन, ढाढ़स एवं हियाव देने वाली सच्चाई है। हम भक्तिहीन, पापी, असहाय, आशा-विहीन और परमेश्वर के प्रति शत्रुता की अवस्था में थे तब भी उसने हमारे बदले मरने के लिए अपना “पुत्र” भेज दिया। *“दुर्लभ है कि किसी धर्मी मनुष्य के लिए कोई मरे, पर हो सकता है कि किसी भले मनुष्य के लिए कोई मरने का साहस भी कर ले। परन्तु परमेश्वर*

अपने प्रेम को हमारे प्रति इस प्रकार प्रदर्शित करता है कि जब हम पापी ही थे मसीह हमारे लिए मरा" (रोमियों 5:7-8)। यहाँ पौलुस किसी अच्छे व्यक्ति के बदले किसी के मरने की बात करता है, लेकिन परमेश्वर ने मानव जाति के लिए क्या किया? क्या उसने सिर्फ अच्छे लोगों के बदले अपने "पुत्र" को मरने भेजा? परमेश्वर ने अपने शत्रुओं के बदले मरने हेतु अपना "पुत्र" भेजा। ऐसा प्रेम इस संसार की उपज (देन) नहीं है। यूहन्ना 15:13 के इन शब्दों पर ध्यान दें : "इससे महान प्रेम और किसी का नहीं, कि कोई अपने मित्रों के लिए अपना प्राण दे"। संसार तो हमें अपने शत्रुओं से लड़ने और उन्हें मारने की तालीम देता है, उनके बदले मरने की नहीं। ज़रा सोचिए! यदि उसके प्रति शत्रुता की अवस्था में होने पर प्रभु परमेश्वर ने हमें बचाने के लिए इतना सब कुछ किया, तो अब उसकी संतान हो जाने पर वह हमारे दैनिक जीवन में क्या और अधिकारी से अपना काम नहीं करेगा (रोमियों 8:25)?

"अतः इससे बढ़कर उसके लहू के द्वारा धर्मी ठहराए जाकर, हम उसके द्वारा परमेश्वर के प्रकोप से क्यों न बचेंगे?" (रोमियों 5:9)। हमारे बदले मसीह यीशु का मरना, उसका दफनाया जाना, उसका पुनः जीवित हो उठना तथा वर्तमान काल में परमेश्वर पिता के दाहिनी ओर विराजमान होकर हमारे लिए निवेदन करना, विश्वासियों को इस सच्चाई की अद्भुत निश्चयता प्रदान करता है कि वे परमेश्वर के समक्ष स्वीकार्य हैं; उनके सारे पाप क्षमा किए गये हैं और अब अपने पापों के लिए पुनः न्याय-दण्ड के भागी नहीं होंगे (रोमियों 8:34)।

“क्योंकि जब हम शत्रु ही थे, हमारा मेल परमेश्वर के साथ उसके पुत्र की मृत्यु के द्वारा हुआ तो उस से बढ़कर, अब मेल हो जाने पर हम उसके जीवन के द्वारा उद्धार पाएंगे” (रोमियों 5:10)। हम पापियों के लिए मसीह मरा। उसकी मृत्यु के माध्यम से पिता परमेश्वर के साथ हमारा मेल-मिलाप एवं एकत्व (सुसम्बन्ध) स्थापित हुआ। अब जबकि वह पुनः जीवित होकर सदा-सर्वदा के लिए जीवित है, तो यह सुनिश्चित है कि वह अपने विश्वासीजन को दैनिक जीवन में पाप की दासता से मुक्त करेगा। “केवल यही नहीं, परन्तु हम परमेश्वर में अपने प्रभु यीशु के द्वारा आनन्दित होते हैं, जिसके द्वारा अब हमारा मेल हुआ है” (रोमियों 5:11)। हमें इस सच्चाई के ज्ञान में हर्षित होना है कि मसीह की मृत्यु के द्वारा पिता परमेश्वर के साथ हमारा पुनर्मिलन हो गया है। अब हम उससे अलग नहीं हैं।

इसके बाद रोमियों के पांचवे अध्याय के शेष पदों में पौलुस विश्वासीजन को यह समझाता है कि वह दैनिक जीवन में पाप की दासता (गुलामी) से मुक्त किया जा चुका है, क्योंकि अब वह (पुराने) आदम में नहीं रहा जिससे सारी मनुष्य जाति को पाप व मृत्यु रूपी विरासत मिली। कैन और हाबिल का जन्म अदन की वाटिका के बाहर क्यों हुआ था? वे क्यों पापी पैदा हुए और क्यों मृत्यु के भागी हुए? जवाब सुस्पष्ट है : क्योंकि वे आदम की संतान थे। इसी प्रकार हम भी पापी पैदा हुए और मृत्यु के हकदार हैं। जब आदम ने पाप किया और दंडित किया गया, तो उसके पाप और उसके दंड में उसके सभी वंशज शामिल थे, क्योंकि उसके पाप के

वक्त उसमें हमारा बीज-अंश (वंश-बीज) था। जब आदम को जीवन के वृक्ष, अदन की वाटिका अर्थात् परमेश्वर की समीपता (उपस्थिति) से दूर (बाहर) कर दिया गया, तो सारी मानव जाति का जन्म, जीवन और मरण अदन की वाटिका, जीवन के वृक्ष और परमेश्वर के उपस्थिति से बाहर हुआ।

*“अतः जिस प्रकार एक मनुष्य के द्वारा पाप ने जगत में प्रवेश किया, तथा पाप के द्वारा मृत्यु आई, उसी प्रकार मृत्यु सब मनुष्यों में फैल गई, क्योंकि सबने पाप किया” (रोमियों 5:12)।* आदम से उत्पन्न सारी मानव जाति का जन्म अदन की वाटिका से बाहर अर्थात् परमेश्वर से पृथकता की अवस्था में हुआ है। आदम, परमेश्वर पर विश्वास रखने और उसकी आज्ञा मानने में असफल रहा और शैतान का अनुसरण किया। चूंकि आदम ने पाप किया इसलिए सब लोग पापी पैदा हुए और ईश्वरीय मार्ग का अनुसरण करने के बजाय शैतान की चाल के पीछे जाते हैं। बहरहाल, प्रभु परमेश्वर हमसे इतना प्रेम करता है कि उसने हमें उसी दशा में नहीं छोड़ा और अपने “एकलौते पुत्र” को इस समस्या का स्थायी समाधान करने भेजा। परमेश्वर द्वारा सृजित पहला मनुष्य आदम था। यदि उसने परमेश्वर की आज्ञा का अनुसरण किया होता, तो उसके सब वंशज प्रभु परमेश्वर को स्वीकार्य होते। लेकिन आदम ने परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन किया, इसके परिणाम स्वरूप उसके सारे वंशज परमेश्वर से अलगाव की अवस्था में जन्म लेते हैं। तो क्या इसका मतलब यह है कि परमेश्वर ने मनुष्य जाति को त्याग दिया है? नहीं बिल्कुल नहीं। इसके बजाय उसने एक अन्य मनुष्य को नियुक्त

(अभिषिक्त) किया जो हमारे बदले मर कर परमेश्वर के साथ हमारा पुनर्मिलन कराया। यीशु मसीह के द्वारा सब लोगों के लिए अपने सृष्टिकर्ता की सुसंगति में आने, क्षमा पाने और अनन्त जीवन अपनाने का मार्ग खुल गया है।

*“अतः जिस प्रकार एक ही अपराध का प्रतिफल सब मनुष्यों के लिए दण्ड की आज्ञा हुआ, उसी प्रकार धार्मिकता के एक ही कार्य का प्रतिफल सब मनुष्यों के लिए धर्मी ठहराया जाना हुआ। जैसे एक मनुष्य के आज्ञा-उल्लंघन से अनेक पापी ठहराए गए, वैसे ही एक मनुष्य की आज्ञाकारिता से अनेक मनुष्य धर्मी ठहराए जाएंगे”* (रोमियों 5:18-19)। प्रथम मानव (प्रथम आदम) की अवज्ञा के कारण अन्य सभी लोग पाप एवं मृत्यु की अधीनता (दासता) में पैदा हुए। मनुष्य के पापों के दण्ड-मूल्य को अपनी मृत्यु के द्वारा चुकता करने के लिए द्वितीय मानव (अर्थात् दूसरे आदम) की तत्परतापूर्ण आज्ञाकारिता के कारण उसमें विश्वास करने वाले परमेश्वर से क्षमा-दान और स्वीकार्यता पाते हैं।

*“व्यवस्था ने प्रवेश किया कि अपराध बढ़ जाए, परन्तु जहाँ पाप बढ़ा वहाँ अनुग्रह में और भी कहीं अधिक वृद्धि हुई, कि जैसे पाप ने मृत्यु में राज्य किया वैसे ही अनुग्रह भी धार्मिकता से अनन्त जीवन के लिए हमारे प्रभु यीशु मसीह के द्वारा राज्य करे”* (रोमियों 5:20-21)। प्रभु परमेश्वर अपनी व्यवस्था इसलिए प्रदान किया था कि मनुष्य का पापीपन बेपर्द हो जाए। इतना ही नहीं, अपने पापीपन और परमेश्वर के प्रति शत्रुता के बारे में हम कुछ नहीं कर सकते, असहाय हैं। हमारी इस पापी एवं लाचार अवस्था को

देखकर यीशु मसीह के (स्व) रूप में परमेश्वर देहधारी होकर हमारे बदले मरने (मृत्यु धारण करने) आया। परमेश्वर का अनुग्रह हमारे पापीपन से बहुत बढ़कर (महान) है। जब हम (पुराने) आदम में थे, तब हमारे जीवन में पाप एवं मृत्यु का शासन-अधिकार रहा। उस समय हम मिस्र की गुलामी में जीने वाले इस्राएलियों की तरह थे। बहुत से इस्राएली इसलिए गुलामी में थे क्योंकि उनके माँ-बाप पहले से ही उस गुलामी की अवस्था में थे। राजा फिरौन उनके मरते दम तक उन्हें गुलाम बनाए रखना चाहता था। उनके छुटकारे का कोई उपाय नहीं था। तब पिता परमेश्वर ने मूसा को इस्तेमाल करके उन्हें छुड़ाया (निर्ग0 1-14 अध्याय)। उन इस्राएलियों की तरह हम भी पाप की दासता में पैदा हुए, क्योंकि हमारा (आदि पिता) आदम पहले से ही पाप की दासता में था। जैसे इस्राएलियों को मिस्र की दासता से मुक्त करने के लिए प्रभु परमेश्वर ने मूसा को इस्तेमाल किया, उसी प्रकार हमें पाप और मृत्यु की दासता से छुटकारा देने के लिए यीशु मसीह को इस्तेमाल किया। अब प्रभु यीशु के विश्वासियों पर परमेश्वर के अनुग्रह का शासन-अधिकार है, और वे परमेश्वर की धार्मिकता रूपी आवरण से ढके हुए हैं।

रोमियों के नाम पौलुस की पत्नी के छठवें अध्याय के आरम्भ में पौलुस के इस प्रश्न पर ध्यान दें : "तो हम क्या कहें? क्या हम पाप करते रहें कि अनुग्रह अधिक होता जाए?" पौलुस को ऐसा प्रश्न करने की क्या जरूरत? इसका स्पष्टीकरण पाँचवें अध्याय के बीसवें पद से जुड़ा है। स्मरण रहे कि व्यवस्था पाप को प्रकट करने के लिए दी गई थी, और पौलुस कहता है कि "जहाँ पाप बढ़ा, वहाँ अनुग्रह में और भी अधिक वृद्धि हुई"। बेशक, परमेश्वर का अनुग्रह हमारे पापीपन से बहुत बड़ा (महान) है। पौलुस यह जानता था कि कुछ लोग उसकी इन बातों का यह गलत अर्थ लगाएंगे कि 'परमेश्वर क्षमा करने को तत्पर है इसलिए विश्वासीजन मनचाहा जीवन-व्यवहार कर सकता है और परमेश्वर तो क्षमा ही करेगा, क्योंकि वह जितना अधिक क्षमा करेगा उतना ही अधिक महान माना जाएगा।' इस खतरनाक गलत शिक्षा को रोकने हेतु पौलुस ने फौरन छठवें अध्याय के दूसरे पद की बात कही : "कदापि नहीं! हम जो पाप के लिए मर गए फिर उस में कैसे जीवन व्यतीत करें" (रोमियों 6:2)? इस दूसरे प्रश्न के द्वारा पौलुस उपर्युक्त सोच की गलती को दर्शाता है - "हम जो पाप के लिए मर गए, फिर उसमें कैसे जीवन व्यतीत करें"? उसकी इस बात का क्या तात्पर्य है? पाप के प्रति हम कब मरे? पिछले पाठ में हमने दो मनुष्यों के बारे में पढ़ा : प्रथम आदम और द्वितीय आदम। जब पहला आदम परमेश्वर के विरुद्ध पाप करने के कारण पापी हो गया तब उसके वंशज होने के फलस्वरूप हम भी पापी हुए। इसलिए प्रथम आदम की तरह हम सब मृत्यु (या परमेश्वर से अलगाव) रूपी दंड के

भागीदार हुए। परन्तु नया जन्म पाने वाले विश्वासी अब पुराने आदम में नहीं हैं। हमारे उद्धार के समय परमेश्वर ने हमें पुराने आदम से निकालकर नये आदम (अर्थात् मसीह) में स्थापित या आरोपित कर दिया : "उसी (अर्थात् परमेश्वर) के कारण तुम मसीह यीशु में हो" (प0 कुरि0 1:30)। जब मसीह क्रूसित किया गया, तब हम भी उसके साथ क्रूसित हुए, जब मसीह गाड़ा (दफनाया) गया तब हम भी उसके साथ दफनाए गए और जब वह पुनः जीवित हो उठा और पिता के दाहिनी ओर विराजमान हुआ तब परमेश्वर की दृष्टि में (सैद्धान्तिक तौर पर) हम भी उसमें शामिल थे। अतः पौलुस गलातियों 2:20 में यह कहता है "मैं मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ाया गया हूँ"।

हाँ, "मसीह में" हमने मृत्यु का अनुभव किया है, पाप की प्रभुता के प्रति मृत्यु अर्थात् अब हम पाप के अधिकार की अधीनता में नहीं रहे। हमारे ऊपर से पाप की अधिकार-सत्ता निरस्त की जा चुकी है और हम उसकी अधीनता से छुड़ाए जा चुके हैं। जब हम पुराने आदम में थे तो पाप और मृत्यु के शासन-अधिकार में थे। तब हम उन इस्राएलियों के समान थे जो मिस्र की गुलामी में रह रहे थे। एक समय ऐसा आया जबकि परमेश्वर ने उन्हें मिस्र की गुलामी से छुड़ाने के लिए मूसा को इस्तेमाल करके लाल समुद्र के मध्य सूखा रास्ता बना दिया, और वे मूसा का अनुसरण करते हुए उस मृत्यु-स्थल (जहाँ परमेश्वर द्वारा मिस्र की सेना को डुबा कर मार डाला गया था) तक और उससे आगे दूसरे छोर तक गये। इस संदर्भ में पहला कुरिन्थियों 10:2 में यह लिखा हुआ है कि उन इस्राएलियों ने "मूसा का बपतिस्मा लिया"। लाल समुद्र पार करने के



बाद तथा परमेश्वर द्वारा उसे पुनः ज्यों का त्यों कर देने के पश्चात् इस्राएली लोग मिस्र की दासता रूपी अपने पुराने जीवन से अलग कर लिए गये थे (उससे उनका सम्बन्ध समाप्त हो गया था)। यह नया नियम की एक आध्यात्मिक सच्चाई का पुराना नियम का एक भौतिक उदाहरण है। पुराना नियम के इस भौतिक उदाहरण में इस्राएली लोग दासता रूपी पुराने जीवन के प्रति "मर गए" थे (रोमियों 6:2), और परमेश्वर की चुनी हुई प्रजा की तरह एक नया स्वतंत्र जीवन जीना सीख रहे थे। इसी प्रकार मसीह को अपना उद्धारकर्ता मानने वाले, आध्यात्मिक मायने में, मसीह में बपतिस्मा पाए हैं और पाप के अधिकार सत्ता रूपी गुलामी में बिताये जाने वाले पुराने जीवन से उनका सम्बन्ध विच्छेद हो चुका है। इसीलिए पौलुस द्वारा रोमियों 6:3 में प्रस्तुत अगला प्रश्न भी महत्वपूर्ण है : "क्या तुम नहीं जानते कि हम सब जो बपतिस्मा के द्वारा मसीह यीशु के साथ एक हुए, बपतिस्मा द्वारा उसकी मृत्यु में भी सहभागी हुए"?

इस संदर्भ में अब्राहम का अनुभव एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। अब्राहम एक अविश्वासी था और ऊर नामक क्षेत्र में रहता था। उसके परिवार के लोग सच्चे परमेश्वर को नहीं जानते थे और अपने अभक्तिपूर्ण जिन्दगी में ही मस्त थे। आगे चलकर प्रभु परमेश्वर ने स्वयं को अब्राहम पर प्रकट करके उसके साथ सम्बन्ध स्थापना की पहला किया। अब्राहम ने प्रभु परमेश्वर की बात मानकर उस पर विश्वास किया। बाद में, जब परमेश्वर ने उससे यह कहा कि अपना घर, परिवार और देश छोड़कर उस नये देश की ओर प्रस्थान करे जिसे परमेश्वर उसे दिखाएगा, तब अब्राहम विश्वास के साथ 'पुराना जीवन' छोड़कर परमेश्वर की बुलाहट के पीछे हो

लिया (इब्रा0 11:8-10; उत्प0 12:1-4)। यदि हमने मसीह पर विश्वास (भरोसा) किया है तो ऐसा ही हुआ है, अर्थात् अपने आदि पिता आदम के जीवन की अधीनता से अलग होकर "मसीह में" स्थापित (आरोपित) कर दिए गये हैं। जैसे हमने प्रथम आदम की परमेश्वर के प्रति मृत्यु (उससे अलगाव) का आत्मिक अनुभव किया है, वैसे अब "मसीह में" पाप के प्रति उसकी मृत्यु का अनुभव पाते हैं। प्रथम आदम की "मृत्यु" ने हमें परमेश्वर से पृथक्ता प्रदान की, लेकिन मसीह की मृत्यु हमें पाप से पृथक्ता प्रदान करती है। हम सिर्फ मसीह की मृत्यु मात्र के सहभागी नहीं हैं, बल्कि उसके दफन एवं पुनरुत्थान में भी सहभागी हैं।

*"इसलिए हम बपतिस्मा द्वारा उसकी मृत्यु में सहभागी होकर उसके साथ गाड़े गए हैं, जिससे कि पिता की महिमा के द्वारा जैसे मसीह जिलाया गया था, वैसे हम भी जीवन की नई चाल चलें। क्योंकि यदि हम उसके साथ उसकी मृत्यु की समानता में एक हो गए हैं, तो निश्चय ही उसके जी उठने की समानता में भी एक हो जाएंगे" (रोमियों 6:4-5)।* यीशु मसीह मरा, दफन किया गया और पुनः जीवित हो उठा। अतः परमेश्वर का वचन यह दर्शाता है कि विश्वासीजन ने मसीह के साथ इन सब का अनुभव किया (अर्थात् सहभागी हुआ)। जैसे कि नूह और उसके परिवार का उस जलयान में अनुभव रहा—जहाँ वह जहाज गया, वहाँ वह भी गये। यदि वह जहाज डूब जाता तो वह लोग भी डूब जाते। सर्वविदित है कि वह जलयान नहीं डूबा। हाँ, तत्कालीन संसार पर परमेश्वर का न्यायदण्ड उंडेला गया, किन्तु नूह एवं उसका घराना उस जलयान के भीतर सुरक्षित छिपा रहा, और उस न्याय-दण्ड से बचाया गया। उसी

प्रकार विश्वासीजन "मसीह में" छिपाया गया है, उसकी मृत्यु, दफन एवं पुनरुत्थान का अनुभव करता है और ईश्वरीय न्याय-दण्ड से बचाया जाता है। स्मरण रहे कि पानी का बपतिस्मा मसीह के साथ हमारी मृत्यु एवं पुनरुत्थान का प्रतीक है। जैसे गेहूँ का बीज जमीन में गिरकर सड़ता व मरता है, तभी उसमें नया अंकुर, पौधा और फल बनता है, उसी प्रकार मसीह की मृत्यु की सहभागिता द्वारा हम भी उसके साथ मर चुके हैं और अब उसमें (उसके द्वारा) नया जीवन पाए हैं (यूह0 12:24)।

*"यह जानते हुए कि हमारा पुराना मनुष्यत्व उसके साथ क्रूस पर चढ़ाया गया, कि हमारा पाप का शरीर निष्क्रिय हो जाए, कि हम आगे को पाप के दास न रहें, क्योंकि जो मर गया, वह पाप से छूट कर निर्दोष ठहरा"* (रोमियों 6:6-7)। प्रभु परमेश्वर की इच्छा है कि सब विश्वासीगण यह समझें कि उनका पुराना मनुष्यत्व (पहले आदम में जो हम थे) मसीह के साथ क्रूसित हो चुका है। जब प्रभु यीशु क्रूस पर मरा तो परमेश्वर की दृष्टि में (सैद्धान्तिक/आध्यात्मिक मायने में) हम भी उसके साथ मर गये। मसीह की मृत्यु में सहभागी होने के कारण हम पाप के अधिकार-सत्ता (अधीनता) से पृथक कर दिए गये, जैसे कि मिस्र की गुलामी से इस्राएली लोग पृथक किये (छुड़ाए) गये थे। लाल सागर के मध्य से होकर मूसा का अनुसरण करते हुए जब इस्राएली लोग वह सागर पार करके दूसरे छोर पर पहुंचे, तो क्या वे तब भी मिस्रियों की अधीनता (गुलामी) में थे? क्या तब भी उन पर मिस्र के राजा का शासन था? नहीं। वे अपने पुराने गुलामी के जीवन से मुक्त (अलग) कर दिये गये थे। हाँ, इस्राएली लोग अपने

स्वतंत्रता-अभियान के अगुवा (मूसा) के साथ-साथ लाल समुद्र में गये। हम अपने मुक्तिदाता के साथ मृत्यु एवं कब्र में गये। इस्राएली लोग अपने पुराने दासत्व-जीवन से अलग होकर एक नये जीवन की शुरुआत करने लाल सागर के दूसरे छोर पर पहुंचे। हम भी मसीह के पुनरुत्थान में उसके कब्र से बाहर और पाप एवं पुराने मनुष्य की दासता से अलग मसीह के द्वारा एक नया जीवन प्रारम्भ करते हैं। मसीह की मृत्यु की सहभागिता के द्वारा हम पाप के अधिकार एवं सत्ता की अधीनता से आजाद किये गये हैं। "जो मर चुका वह पाप से मुक्त हो गया" का यही भावार्थ है।

*"अब यदि हम मसीह के साथ मर गए, तो हम विश्वास करते हैं कि उसके साथ जीवित भी रहेंगे, यह जानते हुए कि मसीह मृतकों में से जिलाया जाकर फिर कभी मरने का नहीं, न अब उस पर मृत्यु की प्रभुता है। क्योंकि जब वह मरा, तो पाप के प्रति सदा के लिए मर गया, परन्तु अब जो जीवित है, वह परमेश्वर के लिए जीवित है" (रोमियों 6:8-10)। पाप के दण्ड एवं अधिकार से हमें छुटकारा देने के लिए जो भी जरूरी था वह सब मसीह यीशु ने सम्पन्न किया। अपनी मृत्यु के समय उसने यह घोषणा की : "पूरा हुआ" (यूह0 19:30)। उसकी मृत्यु, उसके दफन और उसके पुनरुत्थान के द्वारा हम पाप के अधिकार व सत्ता से मुक्त किए गये हैं। हम मसीह के साथ मृतकों में से जिलाए गये हैं जिससे कि परमेश्वर को जान सकें। मसीह के साथ हमारा एकत्व (मसीह में हमारी स्थापना, आरोपण एवं पहचान) ही हमारे नए जीवन का आधार है। यदि कोई वृक्ष (तना या आधार) मुरझा (मर) जाता है तो उसकी डालियों की भी यही दशा होती है। यदि वृक्ष का तना या*

आधार जीवित रहता है तो उसकी डालियां भी। डालियों की दशा वृक्ष के प्रमुख आधार की अवस्था पर निर्भर करती है। वृक्ष से अलग डालियों में जीवन नहीं रह सकता। मसीह के साथ हमारे एकत्व यानि उसमें हमारी स्थापना के बारे में भी ऐसा ही है। हमारा नया जीवन मसीह में हमारे बने रहने पर आधारित है। विश्वास के द्वारा मसीह में हमें (नया) जीवन मिलता है, और उसका जीवन हम में और हमारे द्वारा पवित्र आत्मा के फल उत्पन्न करता है।

*“इसी प्रकार तुम भी अपने आप को पाप के लिए मृतक परन्तु मसीह यीशु में परमेश्वर के लिए जीवित समझो” (रोमियों 6:11)।* हमें इस सच्चाई को सदैव स्मरण रखना और इस पर विश्वास करना है कि पाप की अधीनता के प्रति हम मर चुके हैं। पाप एवं इसकी अधिकार-सत्ता से विश्वासी जन अलग कर दिया गया है, और अब मसीह के द्वारा परमेश्वर से उसका मेल-मिलाप हो चुका है, वह परमेश्वर की सहभागिता में जी रहा है। क्या लाल समुद्र पार करने के बाद भी इस्राएलियों को मिस्र के राजा के भय में जीवन व्यतीत करना आवश्यक था? नहीं। वह लोग आजाद कर दिए गये थे। स्वतंत्र किए गये लोगों की तरह जीवन व्यतीत करने के लिए अब उन्हें सिर्फ यह जानना, समझना व मानना जरूरी था कि वे आजाद कर दिए गये हैं और उनके पुराने स्वामी का उन पर कोई अधिकार नहीं रहा।

*“इसलिए पाप को अपने मरणहार शरीर में प्रभुता न करने दो, कि तुम उसकी लालसाओं को पूरा करो, और न अपने शरीर के अंगों को अधर्म के हथियार बनाकर पाप को सौंपो, परन्तु अपने आपको मृतकों में से जीवित जानकर अपने अंगों को धार्मिकता के*

हथियार होने के लिए परमेश्वर को सौंप दो" (रोमियों 6:12-13)। रोमियों के छठवें अध्याय का यह तेरहवां पद सम्पूर्ण बाइबल में "अर्पण या समर्पण" (किसी वस्तु या व्यक्ति को परमेश्वर के इस्तेमाल हेतु पृथक या अलग करना) के बारे में अत्यन्त महत्वपूर्ण पद है। मसीह में पुनरुत्थान जीवन व्यतीत करने तथा अपने आप को परमेश्वर के लिए "धार्मिकता का हथियार" होने हेतु समर्पित (प्रस्तुत) करने से पूर्व हमें इस सच्चाई के प्रति कायल होना जरूरी है कि हमारे ऊपर पाप की शासन-सत्ता समाप्त हो चुकी है और अब उसे यह अधिकार नहीं कि हमें "अधर्म के हथियार" के रूप में इस्तेमाल करे। उपर्युक्त दोनों पदों में प्रमुख बात इन शब्दों में व्यक्त की गई है : "अपने आप को मृतकों में से जीवित जानकर"। पौलुस यह कह रहा है कि अपने आपको "धार्मिकता के हथियार होने के लिए परमेश्वर को सौंपने" से पूर्व विश्वासीजन को यह विश्वास करना है कि वह (आत्मिक तौर पर) वास्तव में क्रूसित किया जा चुका है, और मृतकों में से जीवित किया गया है। यहाँ रोमियों 6:7 की बात भी नहीं भूलना चाहिए कि "जो मर चुका है वह पाप से मुक्त हो चुका"। परमेश्वर के इस्तेमाल हेतु पुराना जीवन अर्पित नहीं किया जा सकता। सिर्फ वही ईश्वरीय उपयोग के योग्य है जो मृत्यु से होकर पुनरुत्थान प्राप्त कर चुका है। इस सच्चाई के ज्ञान-पहचान के फलस्वरूप परमेश्वर के प्रति हमारा समर्पण स्वाभाविक एवं सहज हो जाता है।

*"तब पाप तुम पर प्रभुता करने नहीं पाएगा, क्योंकि तुम व्यवस्था के अधीन नहीं, परन्तु अनुग्रह के अधीन हो"* (रोमियों 6:14)। इस ज्ञान के प्रतिफल पर ध्यान दें : हमारे ऊपर पाप का

शासन-अधिकार नहीं रहता। पाप अपना अधिकार क्यों खो दिया? क्योंकि अब हम व्यवस्था के अधीन नहीं, बल्कि अनुग्रह के अधीन हैं। (परमेश्वर की कृपा कमाने के लिए मनुष्य का कर्म-प्रयास व्यवस्था है, और मनुष्य के लिए परमेश्वर द्वारा किया गया कार्य ईश्वरीय अनुग्रह है)। व्यवस्था मनुष्य के धर्म-कर्म व प्रयास को महत्व देती है, जबकि अनुग्रह में परमेश्वर द्वारा किए गये कार्य की महत्ता मानी जाती है। व्यवस्था के बन्धन से छुटकारा पाने पर हम अपने कर्म-प्रयास द्वारा परमेश्वर के समक्ष ग्रहणयोग्य होने की निरर्थक चिंता से मुक्त हो जाते हैं (गला0 3:10-14)। जब हम यह विश्वास करने लगते हैं कि पुराने आदम के साथ धार्मिकता कमाने सम्बन्धी हमारे सारे मानुषिक दायित्व एवं तकाज़े क्रूस पर समाप्त हुए, तभी हम "अनुग्रह के अधीन" शब्दों का वास्तविक आनन्द एवं अर्थ समझना शुरू करते हैं। परमेश्वर के मार्ग का प्राथमिक अर्थ **विश्वासी** होना है। हमारा आचरण तो हमारे विश्वासी होने का फल है। वर्तमान समय में हमें चाहे जो पाप तंग कर रहा हो, उसे हमारे ऊपर अब नियंत्रण (शासन) करने का अधिकार नहीं है। प्रभु यीशु मसीह हमें मुक्त कर चुका है। "पाप तुम पर प्रभुता करने नहीं पाएगा"। इस सच्चाई पर विश्वास रखते हुए मसीह की मृत्यु द्वारा खरीदी गई (आध्यात्मिक) आजादी का भरपूर आनन्द लीजिए।

रोमियों के नाम पौलुस की पत्नी के सातवें अध्याय में पौलुस ने व्यवस्था के साथ विश्वासी के सम्बन्ध का वर्णन किया है। जिनके लिए वह यह पत्र लिख रहा था उनमें से अधिकतर लोग यहूदी पृष्ठभूमि के थे और पौलुस की भांति व्यवस्था के बारे में जानते थे तथा व्यवस्था-पालन का भरसक प्रयास भी करते थे। पौलुस यह भी जानता था कि जो यहूदी प्रभु यीशु पर विश्वास किए थे उनमें से अधिकतर की सोच अब भी यही थी कि परमेश्वर को प्रसन्न करने हेतु व्यवस्था-पालन जरूरी है।

*“हे भाइयों, क्या तुम नहीं जानते – मैं व्यवस्था जानने वालों से कह रहा हूँ – कि जब तक मनुष्य जीवित है, तब तक उस व्यक्ति पर व्यवस्था का अधिकार रहता है”* (रोमियों 7:1)। पौलुस यह अच्छी तरह समझता था कि व्यवस्था-पालन में मनुष्य अन्ततः असफल ही रहता है। क्योंकि व्यवस्था का तकाजा यह है कि उसका पूर्णरूपेण पालन किया जाय। व्यवस्था की किसी एक बात (बिन्दु या नियम) का भी पालन करने में हमारी असफलता, हमें अयोग्य ठहराती है अर्थात् व्यवस्था-उल्लंघन का दोषी साबित करती है (याकूब 2:10)। व्यवस्था का तकाजा बड़ा भारी है और व्यवस्था अपने पालन हेतु कोई सहायता प्रदान नहीं करती। ऐसा प्रतीत होता है कि रोमियों का सातवाँ अध्याय इसके 6:14 की टीका है – “पाप तुम पर प्रभुता करने नहीं पाएगा, क्योंकि तुम व्यवस्था के अधीन नहीं, परन्तु अनुग्रह के अधीन हो।” सातवें अध्याय में पौलुस रोम के विश्वासियों को यह समझाना चाह रहा था कि प्रभु को प्रसन्न करने



और मसीही जीवन जीने का मार्ग व्यवस्था-पालन की कोशिश करना है। स्मरण रहे, परमेश्वर को प्रसन्न करने हेतु मनुष्य का कर्म-प्रयास व्यवस्था है जबकि मनुष्य के वास्ते परमेश्वर द्वारा किया जाने वाला कार्य **अनुग्रह** है। अतः पौलुस यह दर्शाता है कि मसीह की मृत्यु तथा उसकी मृत्यु में विश्वासी की सहभागिता के फलस्वरूप विश्वासीजन व्यवस्था एवं उसकी मांग व अधिकार के प्रति मर चुका है। अब वह अनुग्रह के अधीन है, यीशु मसीह के अधिकार एवं सत्ता के अधीन है। पौलुस जानता था कि बहुत से मसीही व्यवस्था-बन्धन में जी रहे थे और व्यवस्था के तकाजों से उनके छुटकारे का एकमात्र उपाय 'मृत्यु' ही है। अतएव उसने पति-पत्नी के परस्पर सम्बन्ध का उदाहरण दिया। व्यवस्था के अधीन, जब तक किसी स्त्री का पति जिन्दा था तब तक उसे दूसरे किसी पुरुष से शादी की अनुमति नहीं थी। वह स्त्री अपने पहले पति के मरने के बाद ही दूसरे किसी से शादी कर सकती थी।

*“क्योंकि विवाहिता स्त्री, अपने पति के जीवित रहते, व्यवस्था से बंधी हुई है, परन्तु यदि उसके पति की मृत्यु हो जाए तो वह उस पति से सम्बंधित व्यवस्था से मुक्त हो जाती है। इसलिए, यदि वह अपने पति के जीवित रहते हुए किसी दूसरे की हो जाए तो व्यभिचारिणी कहलाएगी, परन्तु यदि उसके पति की मृत्यु हो जाए तो वह इस व्यवस्था से मुक्त हो जाती है, यहाँ तक कि यदि वह किसी दूसरे पति की भी हो जाए, वह व्यभिचारिणी न कहलाएगी। इसलिए मेरे भाइयों, तुम भी मसीह की देह के द्वारा व्यवस्था के प्रति मृतक बना दिए गए थे कि तुम उसके हो जाओ जो मृतकों में से*

जिलाया गया कि हम परमेश्वर के लिए फल लाएँ” (रोमियों 7:2-4)। व्यवस्था के अधिकार की अधीनता से छुटकारा पाना विश्वासियों के लिए क्यों महत्वपूर्ण है? इस प्रसंग में पहली महत्वपूर्ण बात यह है कि व्यवस्था मनुष्य को इसलिए नहीं दी गई कि वह इसकी आज्ञाओं का पालन कर सकेगा, बल्कि परमेश्वर को यह ज्ञात था कि मनुष्य इसका उल्लंघन करेगा। ऐसा इसलिए हुआ ताकि मनुष्य अपने पापीपन व निरुपाय अवस्था को पहचाने तथा अपने लिए उद्धारकर्ता की आवश्यकता को पहचाने (रोमियों 3:20)। यहाँ यह भी ध्यान देना है कि व्यवस्था पूर्ण आज्ञापालन चाहती है, किन्तु ऐसा करने हेतु कोई सहायता या शक्ति नहीं प्रदान करती। नतीजतन, व्यवस्था के तकाज़े को विधिवत् पूरा करने में कोई भी इंसान सक्षम नहीं है, और सब लोग इसके उल्लंघन के दोषी एवं दण्डनीय हैं।

मान लीजिए किसी महिला की शादी एक ऐसे पुरुष से हो गई है जो पूर्णतावादी सोच का व्यक्ति है, अर्थात् वह हरेक काम को सही व सिद्ध रूप में ही करना पसन्द करता है। वह अपनी पत्नी के प्रत्येक काम को पूर्ण या ठीक रूप में ही देखना चाहता है, मगर उसकी मदद के नाम पर अपनी एक अंगुली भी नहीं उठाता। वह बेचारी भरसक कोशिश करती है लेकिन हरेक काम को पति की पूर्णतावादी इच्छा के मुताबिक नहीं कर पाती, यानि प्रत्येक बात में पूरी तरह से उसे संतुष्ट नहीं कर पाती। उससे भूल-चूक हो ही जाती है। शीघ्र ही उसे यह पता चलता है कि वह जितनी अधिक कोशिश के द्वारा अपने पति को संतुष्ट करने का कठिन प्रयास करती है उतना ही अधिक उसकी सीमितता व दुर्बलता की वह

बुराई करता है। चूंकि वह अपने में जरा सी भी कमी-कमजोरी देखने में असमर्थ है अर्थात् स्वयं को बेऐब सोचता है, इसलिए वह अपनी पत्नी की थकावट, असावधानी, कमजोरी अथवा गलती के प्रति सहनशीलता या समझदारी का व्यवहार करने में असमर्थ (अयोग्य) है। वह स्त्री एक निर्दयी व प्रेम-विहीन पुरुष के सम्बन्ध-जाल में फंसी है। उस महिला की पीड़ा तब और भी असहनीय हो जाती है जब वह ऐसे दम्पतियों को देखती है जो परस्पर कोमलता, प्रेम व सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करते हुए एक दूसरे की मदद करते हैं। ऐसे विवाह-बन्धन को सिर्फ मृत्यु ही समाप्त कर सकती है अर्थात् वह महिला उस पुरुष के मरने के बाद ही अन्य किसी प्रेमी व भले मानुष से अपनी दूसरी शादी कर सकती है। यह शारीरिक उदाहरण ऐसे प्रत्येक मसीही के आत्मिक जीवन सम्बन्धी सच्चाई को प्रस्तुत करता है जो उद्धार के समय व्यवस्था-बन्धन से छुटकारा पाने के बावजूद उसी के अधीन फिर जीने लगा है (गला0 3:1-3)। हम चाहे जितना अधिक प्रयास करें, पूर्णआज्ञाकारिता में कहीं न कहीं और कभी न कभी हम अवश्य फेल होते हैं। ईश्वरीय आज्ञाओं का अचूक पालन करने में हम असफल होते हैं। स्मरण रहे, व्यवस्था आज्ञा मात्र देती है, पालन करने की सामर्थ्य नहीं। हम अपनी सामर्थ्य से इसका पूर्ण पालन नहीं कर सकते। बेशक, व्यवस्था धर्मी एवं पवित्र है, किन्तु व्यवस्था में दया व अनुग्रह दर्शाने की सामर्थ्य नहीं है। व्यवस्था यह कहती है कि इसके प्रत्येक उल्लंघन को मृत्यु-दण्ड दिया जाए।

व्यवस्था तो परमेश्वर को प्रसन्न करने हेतु मनुष्य के कार्य-दायित्व को दर्शाती है, जबकि मनुष्य के लिए किया गया ईश्वरीय कार्य ही अनुग्रह है। तो इस समस्या के समाधान हेतु

परमेश्वर ने क्या किया? छठवें अध्याय की बात को याद करें कि पिता परमेश्वर ने हमें "मसीह में" स्थापित कर दिया है अर्थात् उसके साथ हम क्रूसित हुए और पाप के अधिकार-सत्ता से मुक्त किए गये। अब सातवां अध्याय यह सिखाता है कि मसीह की मृत्यु में हमारी सहभागिता हमें सिर्फ पाप के अधिकार-सत्ता से ही नहीं छुड़ाती, बल्कि इसके द्वारा हम व्यवस्था के लिए भी मर गए। इस प्रकार अब हम दूसरे 'पुरुष' (दूसरे आदम) अर्थात् यीशु मसीह के साथ 'विवाह' करने के लिए मुक्त हो गए हैं। प्रभु परमेश्वर को प्रसन्न करने की सच्ची इच्छा, शक्ति और भक्ति सिर्फ यीशु ही प्रदान कर सकता है (फिलि0 2:13)। अतः पौलुस ने हरेक मसीही को यह समझाना चाहा कि अब वह व्यवस्था के अधीन नहीं, बल्कि यीशु के अधीन है। व्यवस्था तो कोई सहायता-सामर्थ्य प्रदान किए बगैर पूर्णआज्ञाकारिता चाहती है, लेकिन अनुग्रह के अधीन प्रभु मसीह ने प्रत्येक विश्वासीजन में वास करने के लिए अपना पवित्र आत्मा भेजा है, जिससे उन्हें परमेश्वर के लिए जीवन व्यतीत करने की सामर्थ्य मिले।

कुछ लोग इस सोच के शिकार होते हैं कि परमेश्वर की संतान होने के कारण परमेश्वर को प्रसन्न करने वाला जीवन व्यतीत करना विश्वासी जन पर निर्भर करता है। लेकिन अपनी शक्ति से ईश्वरीय आज्ञाओं (व्यवस्था) का पालन करने में प्रयासरत प्रत्येक मसीही अपनी अन्तरात्मा में एक गम्भीर संघर्ष पाता है (रोमियों 5:17)। हमारे अन्तर्मन का एक पक्ष ईश्वर की इच्छा को पूरा करना चाहता है, जबकि दूसरा पक्ष हमारे अहं (या स्वार्थ-सिद्धि) को। हाँ, अपने

क्रोधपूर्ण एवं बुरे विचारों को रोकने की हम भरसक कोशिश तो करते हैं, किन्तु कभी न कभी इसमें नाकाम साबित होते हैं। ऐसा क्यों? जब हमें मसीह में नया जीवन (जन्म) मिला, तब प्रभु परमेश्वर की ओर से हमें एक नया स्वभाव मिला जो सदैव परमेश्वर के ज्ञान, इच्छा एवं आज्ञाकारिता का आकांक्षी रहता है। इसके विपरीत पुराना आदम स्वभाव, पाप स्वभाव या शारीरिकता अभी भी हम में विद्यमान है, जो हमारे प्राण (मन, इच्छा एवं भावनाओं) पर कब्जा जमा कर हमारे कार्य-व्यवहार को कंट्रोल करने हेतु हमारी आत्मा से संघर्ष करता रहता है। इसीलिए पौलुस इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि व्यवस्था-पालन एवं परमेश्वर की प्रसन्नता की चाहत रखते हुए भी उसके भीतर की पाप-सामर्थ्य (पाप-स्वभाव) उसके समस्त कर्म-प्रयासों को विफल कर देती है। *"क्योंकि हम जानते हैं कि व्यवस्था तो आत्मिक है, परन्तु मैं शारीरिक हूँ तथा पाप के हाथों बिका हुआ हूँ"* (रोमियों 7:14)।

परमेश्वर यह चाहता है कि जो उचित, सही एवं भला कार्य है, हम वही करें, और चूँकि विश्वासी को नया स्वभाव मिला है, इसलिए वह इस ईश्वरीय इच्छा से सहमत होता है। लेकिन हमारा पुराना स्वभाव इससे सहमत नहीं होता, क्योंकि वह आज भी उतना ही पापी है जितना कि शारीरिक जन्म के समय था। यह पुराना स्वभाव सुधरेगा नहीं। यह तो सिर्फ स्वार्थ एवं पाप की सेवा करना चाहता है। इसलिए विश्वासी जन अपने कर्म-प्रयास द्वारा परमेश्वर को प्रसन्न करने में सफल नहीं हो पाता, क्योंकि शारीरिकता अर्थात् पुराना स्वभाव इतना प्रबल होता है कि उस पर हावी होता रहता है।

कहने का मतलब यह है कि विश्वासी जन अपनी ताकत या इच्छा-शक्ति के बल पर शारीरिकता (पुराने स्वभाव) की अनदेखी करके नये स्वभाव की ईश्वरीय इच्छाओं को पूरा नहीं कर सकता। परमेश्वर की आज्ञाकारिता के बारे में पौलुस को भी अपनी अन्तरात्मा में संघर्ष मिला (गला0 5:17)। उसने जब परमेश्वर की सुइच्छा पर चलना चाहा तो उसके अन्दर की बुराई हावी हुई और असफल हुआ। जिन अच्छी बातों को वह भला समझ कर करने का पूरा प्रयास करता था, उन्हें नहीं कर पाता था, और जो नहीं करना चाहता था उन्हीं बातों को कर बैठता था (अपनी पूरी कोशिश के बावजूद जिन बातों पर मन नहीं लगाना चाहिए था उन्हीं पर मन लगा देता था और जिन पर मन लगाना था, उन पर मन लगाने में फेल होता रहा)। *“इसलिए जो मैं करता हूँ उसको समझ नहीं पाता; क्योंकि जो मैं चाहता हूँ वह नहीं किया करता, परन्तु जिस से मुझे घृणा है वही करता हूँ – परन्तु यदि मैं जो नहीं चाहता वही करता हूँ तो मैं यह मानते हुए व्यवस्था से सहमत हूँ कि वह भली है”* (रोमियों 7:15-16)। सारांश यह है कि हमारा नया स्वभाव परमेश्वर का प्रेमी है और उसकी आज्ञा का पालन करना चाहता है। हमारा पुराना स्वभाव (शारीरिकता) स्वार्थ एवं पाप का प्रेमी है। हमारे भीतर स्वार्थ-सिद्धि के लिए निरन्तर सक्रिय शारीरिकता (पुराने स्वभाव) पर हम अपनी कोशिश या कर्म-प्रयास से विजय पाने में सफल नहीं होते। *“तो ऐसी दशा में उसका करने वाला मैं नहीं रहा, परन्तु पाप है जो मुझ में बसा हुआ है। इसलिए मैं जानता हूँ कि मुझमें अर्थात् मेरे शरीर में कुछ भी भला वास नहीं करता। इच्छा तो*

मुझ में है, परन्तु मुझ से भला कार्य बन नहीं पड़ता। क्योंकि जिस भलाई की मैं इच्छा करता हूँ, वह तो नहीं कर पाता, परन्तु जिस बुराई की इच्छा नहीं करता, वही करता रहता हूँ। परन्तु यदि मैं वही करता हूँ जिसकी इच्छा नहीं करता, तो उसका करने वाला मैं नहीं हुआ, परन्तु पाप जो मुझ में बसा हुआ है। तब मैं यह सिद्धान्त पाता हूँ कि यद्यपि मैं भलाई करना चाहता हूँ, बुराई मुझ में है। क्योंकि मैं भीतरी मनुष्यत्व में आनन्दपूर्वक परमेश्वर की व्यवस्था से सहमत रहता हूँ, परन्तु मुझे अपने अंगों में एक भिन्न व्यवस्था का बोध होता है, जो मेरे मन की व्यवस्था के विरुद्ध युद्ध करती रहती है, और पाप की व्यवस्था जो मेरे अंगों में है, उसका बन्दी बना देती है” (रोमियों 7:17-23)।

अब सवाल यह है कि परमेश्वर की अवज्ञा करने एवं पाप से प्रेम रखने वाले इस शारीरिक स्वभाव से विश्वासीजन छुटकारा कैसे पाए? “मैं कैसा अभाग मनुष्य हूँ! मुझे मृत्यु की देह से कौन छुड़ाएगा” (रोमियों 7:24)? पाप तथा पाप के स्वभाव से केवल प्रभु यीशु मसीह ही छुटकारा प्रदान कर सकता है। पिता परमेश्वर ने हमें मसीह की मृत्यु, उसके दफन एवं उसके पुनरुत्थान की सहभागिता (एकता) से जोड़ दिया है ताकि हम पवित्र आत्मा द्वारा मसीह का जीवन (रस) पाने के लिए स्वतंत्र रहें (दू० कुरि० 3:18)। अतः केवल पवित्र आत्मा की सामर्थ्य से ही पुराने आदम स्वभाव के नियंत्रण से हम स्वतंत्र किए जा सकते हैं, और केवल वही हमारे भीतर मसीह के जीवन (सच्चा **मसीही जीवन**) को उत्पन्न एवं विकसित कर सकता है।

“अतः अब उन पर जो मसीह यीशु में हैं, दण्ड की आज्ञा नहीं” (रोमियों 8:1)। अब आठवें अध्याय में पौलुस व्यवस्था से आजाद होकर मसीह की अधीनता में जीवन बिताने की चर्चा करता है। व्यवस्था द्वारा सब को दोषी एवं दण्डनीय ठहराया गया है, क्योंकि कोई भी जन व्यवस्था का पूर्णरूपेण पालन नहीं कर सकता। परन्तु “मसीह में” हम “दण्डनीय” नहीं हैं – न तो परमेश्वर के समक्ष दण्डनीय रह गए और न ही हमें अब स्वयं को दण्डनीय समझना है। मसीह यीशु ने हमारे समस्त पाप एवं दोष का दण्ड अपने ऊपर ले लिया; उसने अपने लहू के द्वारा हमारे पापों का दण्ड-मूल्य पूर्णतः चुकता किया, क्योंकि हमारे पाप का दण्ड मृत्यु थी (रोमियों 6:23, लैव्य 17:11)। प्रभु यीशु मसीह इसका पूर्ण भुगतान कर चुका है। अतः अब हम दण्डनीय नहीं हैं।

“क्योंकि जीवन के आत्मा की व्यवस्था ने मसीह यीशु में तुम्हें पाप और मृत्यु की व्यवस्था से स्वतंत्र कर दिया है। क्योंकि जो काम व्यवस्था, शरीर के द्वारा दुर्बल होते हुए, न कर सकी, उस काम को परमेश्वर ने किया, अर्थात् अपने ही पुत्र को पापमय शरीर की समानता में तथा पाप के लिए बलिदान होने को भेजकर, शरीर में पाप को दोषी ठहराया, जिससे कि व्यवस्था की मांग हम में पूरी हो सके जो शरीर के अनुसार नहीं, परन्तु आत्मा के अनुसार चलते हैं (रोमियों 8:2-4)। व्यवस्था हमें परमेश्वर के समक्ष ग्रहणयोग्य नहीं बना सकती थी। व्यवस्था द्वारा हमसे की गई मांग परमेश्वर की ओर से थी, लेकिन हमारे अन्तर्मन में “बसे हुए पाप” के कारण हम व्यवस्था की आज्ञाओं के पालन में समर्थ नहीं थे। बेशक, व्यवस्था



भली है, लेकिन व्यवस्था हमें भला (धर्मी) नहीं बना सकती। जैसे कोई निर्बल (या पैरों से विकलांग) व्यक्ति लम्बी दौड़ (मैराथन) नहीं दौड़ सकता। हो सकता है कि ऐसा व्यक्ति लम्बी दौड़ दौड़ने की ख्वाहिश रखता हो, और ऐसी दौड़ की प्रशंसा करता हो; लेकिन भरसक कोशिश करने के बावजूद वह लम्बी दौड़ दौड़ने में असमर्थ होता है। हमारे साथ व्यवस्था की भी यही कहानी है। व्यवस्था हमसे निरन्तर वह काम करने की मांग करती रही जिसे मनुष्य अपनी सामर्थ्य में नहीं कर सकता था। परन्तु अब पवित्र आत्मा हमारी अन्तरात्मा में मसीह का जीवन डालकर "आत्मा के फल" पैदा करता है (गला0 5:22-23)। रोचक है कि रोमियों के पहले अध्याय से सातवें अध्याय के मध्य **पवित्र आत्मा** का केवल एक बार ही जिक्र आया है, लेकिन आठवें अध्याय में लगभग उन्नीस बार **पवित्र आत्मा** का जिक्र किया गया है। जब मसीह के साथ सह-क्रूसित किए जाने की सच्चाई को विश्वासपूर्वक पहचानते हुए हम जीवन व्यतीत करते हैं, तब पवित्र आत्मा पाप एवं व्यवस्था के बंधन से छुड़ाते हुए और हम में मसीह का जीवन विकसित करता है।

## आठ

*“जिससे कि व्यवस्था की मांग हम में पूरी हो सके जो शरीर के अनुसार नहीं, परन्तु आत्मा के अनुसार चलते हैं” (रोमियों 8:4)।*

जो कार्य व्यवस्था नहीं कर सकती थी उसे परमेश्वर ने किया। परमेश्वर ने सिर्फ पाप को दंडित ही नहीं किया, बल्कि पवित्र आत्मा प्रदान करके हमारे जीवन में व्यवस्था के धार्मिकतापूर्ण तकाज़े (मांग) को पूर्ण करने का उपाय भी किया। यह हमारे दैनिक जीवन में कैसे सम्पन्न (लागू) होगा? उपर्युक्त चौथा पद उत्तर देता है। जब हम “शरीर के अनुसार नहीं, परन्तु आत्मा के अनुसार चलते हैं”। किसी “के अनुसार चलने” का अर्थ उसकी अधीनता, दासता, नियंत्रण एवं सहमति में कार्य-व्यवहार करना है। इस प्रकार “शरीर के अनुसार” आचरण करने का अर्थ शारीरिकता यानि पुराने आदम स्वभाव के अधीन, नियंत्रण एवं दासता में जीना है। इसके विपरीत “आत्मा के अनुसार” चलने का तात्पर्य (पवित्र) आत्मा की अधीनता, अगुवाई, दासता एवं नियंत्रण में जीवन जीना है (गला0 5:16)।

*“क्योंकि शारीरिक व्यक्ति शरीर की बातों पर मन लगाते हैं, परन्तु आध्यात्मिक तो आत्मा की बातों पर मन लगाते हैं” (रोमियों 8:5)।* शारीरिकता के नियंत्रण में जीवन जीने वालों का दिलो-दिमाग पुराने स्वभाव (पाप-स्वभाव) की अभिलाषाओं में लगा रहता है। परन्तु जिनका जीवन पवित्र आत्मा के नियंत्रण में होता है, उनका दिलो-दिमाग पवित्र आत्मा की इच्छाओं की ओर केन्द्रित रहता है। यहाँ “मन लगाने” का भावार्थ स्पष्ट है। शरीर पर “मन लगाने” का

मतलब है – शारीरिक बातों, विचारों, अभिलाषाओं एवं गतिविधियों पर ध्यान देना, विचार करते रहना, लिप्त रहना, मजा लेना और लवलीन रहना। दूसरे शब्दों में, ऐसे लोग शारीरिक (पाप-स्वभाव की) बातों में ही लवलीन रहते हैं – कामुकता, लालच, आलसीपन, अहंकार, ईर्ष्या, क्रोध इत्यादि। परन्तु जो लोग “आत्मा के अनुसार” जीवन व्यतीत करते हैं, वे (पवित्र) आत्मा की अधीनता में होकर उसी की बातों में लवलीन रहते हैं। उदाहरणार्थ : उद्धार (की बातों) में, प्रभु यीशु मसीह में, वचन में, स्तुति-आराधना एवं प्रार्थना में, विश्वासियों (संतों) की संगति में तथा प्रेम, आनन्द व शांति जैसी बातों में। हाँ, सच्चे मसीही लोगों में भी इन बातों की पूर्णता या सिद्धता नहीं पाई जाती, किन्तु वे कुछ न कुछ हद तक “आत्मा की बातों पर मन लगाते” हैं। इसके विपरीत अनेक ऐसे लोग हैं जो “आत्मा की बातों” से कोई वास्ता नहीं रखना चाहते, और इसका कारण रोमियों 8:6 से स्पष्ट है। “शरीर पर मन लगाना तो मृत्यु है, परन्तु आत्मा पर मन लगाना जीवन और शांति है”। शारीरिकता अर्थात् पुराने आदम स्वभाव के नियंत्रण में जीवन जीने वाले अपने दैनिक जीवन में मृत्यु (अलगाव या पृथकता) का तथा परमेश्वर की संगति के अभाव का अनुभव करते हैं। इसके विपरीत “आत्मा के” नियंत्रण में चलने वाले, आध्यात्मिक प्रवृत्ति के लोग, अपने दैनिक जीवन में परमेश्वर की समीपता, उसके साथ सहमति तथा उसकी इच्छानुसार जीवन जीने का अनुभव (आनन्द) पाते हैं। यहाँ जिस “जीवन व शांति” का जिक्र है, वह मृतकों में से पुनः जीवित हो उठे मसीह का जीवन और “मसीह की शांति” है (कुलु0 3:15)।

“क्योंकि शारीरिक मन तो परमेश्वर से शत्रुता करता है। वह न तो परमेश्वर की व्यवस्था के अधीन है और न ही हो सकता है” (रोमियों 8:7)। परमेश्वर की संतान होने से पूर्व हम क्या थे? उसके शत्रु (रोमियों 5:10) क्यों? क्योंकि हम पहिले आदम में थे और उससे प्राप्त पाप-स्वभाव की दासता में थे। बेशक, अब हम परमेश्वर की संतान हो गए हैं, किन्तु पुराने पाप-स्वभाव की शक्ति हमारे प्राण (मन, इच्छा, भावनाओं) पर अपना कब्जा बनाए रखने के लिए अभी भी संघर्षरत है। इसके अतिरिक्त, जब हमारा मन (प्राण) शारीरिकता के वश में रहता है, तब हम परमेश्वर के शत्रु समान विचार, व्यवहार करते हैं। “जो शारीरिक हैं, वे परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकते” (रोमियों 8:8)। सारी मनुष्य जाति के प्रभु परमेश्वर की ओर से यह अत्यन्त महान एवं महत्वपूर्ण घोषणा है कि शारीरिक लोग परमेश्वर को “प्रसन्न नहीं कर सकते”, क्योंकि शारीरिकता में “कुछ भी भला वास नहीं करता” (रोमियों 7:18)। यह अत्यन्त भयावह अवस्था है – सारी आशीषों के दाता से सदा काल की दुश्मनी की अवस्था।

“यदि वास्तव में परमेश्वर का आत्मा तुम में वास करता है, तो तुम शरीर में नहीं, वरन् आत्मा में हो। परन्तु यदि किसी में मसीह का आत्मा न हो तो वह उसका नहीं है” (रोमियों 8:9)। यहाँ सच्चे मसीही की पहचान पर ध्यान दें – उसमें प्रभु की आत्मा का वास होता है। अधिकतर मसीही अपने क्रिया-कलाप, कार्य-व्यवहार या कार्य-सेवा पर मन लगाने की आजमाइश में होते हैं ताकि यह सोचें कि ईश्वर की इच्छा के अनुसार काम कर रहे हैं कि नहीं।

अगर ऐसा सोचते हैं कि उनकी गतिविधियां और कार्य-सेवा ठीक-ठाक हैं तो स्वयं को अच्छा मसीही महसूस करते हैं। बहरहाल, इस नौवें पद में बिल्कुल भिन्न एवं स्पष्ट बात कही गई है – या तो हम मसीह के हैं या बिल्कुल नहीं। जो मसीह के हैं, उनमें **पवित्र आत्मा** है।

*“यदि मसीह तुम में है तो यद्यपि शरीर पाप के कारण मृतक है, फिर भी आत्मा धार्मिकता के कारण जीवित है”* (रोमियों 8:10)। “मसीह तुम में” – पौलुस की शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु यही था, और विभिन्न कलीसियाओं के लिए उसने अपने सम्पूर्ण प्रचार एवं उपदेश में इसे स्पष्ट भी किया। वह प्रत्येक विश्वासी के जीवन में मसीह के स्वरूप का सृजन देखना चाहता था (कुलु0 1:27; गला0 4:19)। यहाँ दसवें पद में दोहरी सच्चाई व्यक्त की गई है। हमारा शरीर (देह) “मृतक” है, अर्थात् हमारा शरीर श्राप के अधीन है, इसका उद्धार नहीं हुआ है और पाप के कारण यह परमेश्वर के प्रति “मृतक” है (रोमियों 3:23)। लेकिन मसीह में प्रदान की गई धार्मिकता के कारण हमारी आत्मा परमेश्वर के प्रति जीवित है (दू0 कुरि0 5:21)।

*“यदि उसका आत्मा जिसने यीशु को मृतकों में से जीवित किया तुम में निवास करता है, तो वह जिसने मसीह यीशु को मृतकों में से जीवित किया, तुम्हारी मरणहार देहों को भी अपने आत्मा के द्वारा जो तुम में वास करता है, जीवित करेगा”* (रोमियों 8:11)। यहाँ प्रमुख विषय “मरणहार देह” है। यद्यपि पाप के कारण हमारी देह परमेश्वर के प्रति “मृतक” है तथापि ‘परमेश्वर के प्रति मृतक’

इस मरणहार शरीर को (पवित्र) आत्मा जीवित करेगा (शारीरिक मृत्यु के बावजूद)। इसके फलस्वरूप हम अपनी देह के अंगों को धार्मिकता के हथियार के रूप में परमेश्वर को सौंपते हैं (रोमियों 6:13)। इतना ही नहीं, बल्कि मसीह के पुनरागमन के समय, हमारी उद्धार-प्राप्त आत्मा की तरह, हमारा शरीर भी परमेश्वर के प्रति जीवित रहेगा। पवित्रशास्त्र बाइबल में "मरणशील, नश्वर या नाशवान" और "अविनाशी, अनश्वर या अमर" जैसे शब्द प्रायः 'देह या शरीर' के संदर्भ में प्रयोग किये गये हैं। मसीह के पुनरागमन के समय यह "नाशवान" ही "अविनाशी को पहिन" लेगा (प0 कुरि0 15:35-54, दू0 कुरि0 5:1-4)।

*"इसलिए हे भाइयों, हम शरीर के ऋणी नहीं कि शरीर के अनुसार जीवन व्यतीत करें"* (रोमियों 8:12)। आठवें अध्याय के इस बारहवें पद में, छठवें अध्याय के शुरू से लेकर यहाँ तक की प्रमुख सच्चाईयों का सारांश दिखाई देता है :- मसीह के साथ हमारी पहचान (एकता), उसके साथ हमारे पुराने मनुष्यत्व का क्रूसित होना, पुराने आदम के साथ सम्बन्ध-विच्छेद, मसीह के जीवन की नवीनता में सहभागिता, हमारे भीतर पाप और मृत्यु की व्यवस्था से मुक्त करने वाली जीवन-प्रदायी (पवित्र) आत्मा का वास, और मसीह को मृतकों में से पुनः जीवित करने वाले पवित्र आत्मा द्वारा उसके पुनरागमन के समय हमारी देह को (जो कि वर्तमान में परमेश्वर के प्रति मृतक है) परमेश्वर के प्रति जीवित करना। अतः हम विश्वासी जन परमेश्वर के ऋणी हैं, मसीह के ऋणी हैं और अन्तर्वासी पवित्र आत्मा के ऋणी हैं; लेकिन शारीरिकता (पुराने मनुष्यत्व या पापी स्वभाव) के ऋणी नहीं हैं।

“क्योंकि यदि तुम शरीर के अनुसार जीवन बिता रहे हो तो तुम्हें अवश्य मरना है, परन्तु यदि आत्मा के द्वारा शरीर के कार्यों को नष्ट कर रहे हो तो तुम जीवित रहोगे” (रोमियों 8:13)। इस पद में दी गई महान चेतावनी यह दर्शाती है कि बहुत से लोग सत्य का ज्ञान होने के बावजूद पवित्र आत्मा की अधीनता में जीवन व्यतीत करने के बजाय शारीरिकता में जीवन जीते हैं। पुराना आदम स्वभाव ‘शरीर या शारीरिकता’ रूपी ढांचे के द्वारा अपने को प्रकट करता है (अर्थात् अपना प्रदर्शन करता है)। पवित्र आत्मा हमारे जीवन में हमारी देह के बुरे कामों को मारने (नष्ट करने) के लिए वास करता है। इन बुरे कामों का स्रोत पुराना आदम स्वभाव (शारीरिकता) है जो हमारे प्राण (अर्थात् मन, इच्छा, भावना) द्वारा काम करके अपने आप को बुरे आचरण (देह के बुरे कार्य) के रूप में प्रकट करता है। हमारी देह के बुरे कार्य-व्यवहार स्वभावतः स्वार्थी होते हैं, क्योंकि अभी इस देह का ‘छुटकारा’ नहीं हुआ है। रोमियों 6:11-12 में “पाप के लिए मृतक” समझने की बात कही गई है; और “पाप को मरणहार शरीर में प्रभुता” नहीं करने देने की शिक्षा दी गई है ताकि हम “उसकी लालसाओं को पूरा” न करें। तात्पर्य यह है कि मसीही विश्वासियों को एक पावन जीवन व्यतीत करना है (प0 थिस्स0 4:7)। ऐसा करने की सामर्थ्य हम में अथवा हमारे किसी क्रिया-कलाप में निहित नहीं है। परन्तु परमेश्वर का आत्मा विश्वासी जन में वास करता है, ताकि “शरीर के कार्यों” को नष्ट करे।

*"क्योंकि वे सब जो परमेश्वर के आत्मा के द्वारा चलाए जाते हैं, वे परमेश्वर के संतान हैं"* (रोमियों 8:14)। यहाँ परमेश्वर के आत्मा के द्वारा "चलाए" जाने का अर्थ पवित्र आत्मा की अधीनता या कन्ट्रोल में होने से है, अर्थात् "आत्मा से जन्में" और आत्मा द्वारा जीवन व्यतीत करने वालों का पवित्र आत्मा के नियंत्रण में होना। अक्सर लोग "आत्मा के द्वारा चलाए" जाने का अर्थ सेवकाई और अगुवाई समझते हैं जो कि इस पद के संदर्भ में उचित नहीं है। यहाँ यह भी ध्यान देना है कि "सन्तान" शब्द 'व्यस्क पुत्रों' की ओर इशारा करता है, क्योंकि पौलुस के अनुसार परमेश्वर की सच्ची सन्तान **आत्मा** की अधीनता में जीवन व्यतीत करती है।

*"तुमने दासत्व का आत्मा नहीं पाया है कि फिर भयभीत हो, परन्तु पुत्रों के समान लेपालकपन का आत्मा पाया है, जिससे हम 'हे अब्बा! हे पिता!' कह कर पुकारते हैं"* (रोमियों 8:15)। इस्राएली लोग जब व्यवस्था के अधीन लाए गये, तो एक दासत्व की आत्मा पाए। कितने अफसोस की बात कि अनेक मसीही विश्वासी भी अपने आपको व्यवस्था की अधीनता में मानते हैं और इस प्रकार स्वयं को दासत्व में दर्शाते हैं। ऐसा करके वे स्वयं को संसार के समान बनाते हैं जो मसीह को एक निष्ठुर (कठोर) स्वामी जैसा मानता है। ऐसी दासता की आत्मा भय पैदा करती है, और भय व दासता की आत्मा हमें परमेश्वर की समीपता से दूर रखती है। परन्तु हमने "पुत्रों के समान ले पालकपन का आत्मा पाया है; जिससे हम हे अब्बा; हे पिता! कहकर पुकारते हैं" (दू0 तीमु0 1:7; गला0 4:5-6)।



“आत्मा स्वयं हमारी आत्मा के साथ मिल कर साक्षी देता है कि हम परमेश्वर की संतान हैं” (रोमियों 8:16)। मनुष्य का दर्शनशास्त्र एवं उसका विज्ञान मानव-आत्मा और पवित्र आत्मा के बारे में कुछ नहीं जानते। रोचक है कि प्रभु परमेश्वर ने इन पदों में मनुष्य की बुद्धि को नहीं बल्कि उसकी ‘आत्मा’ को सम्बोधित किया है (आत्मा स्वयं हमारी आत्मा के साथ मिलकर साक्षी देता है)। परमेश्वर के सच्चे विश्वासी को इस वास्तविकता का ज्ञान होता है कि (परमेश्वर के प्रति जागरूक) उसकी आत्मा को (न कि उसके मस्तिष्क को) पवित्र आत्मा इस सच्चाई की साक्षी देता रहता है कि वह परमेश्वर की संतान (अर्थात् उससे जन्मा) है। आत्मा सिर्फ मानव चेतना तक ही सीमित नहीं है, उससे परे जाता है; और इसीलिए हमारे उद्धार की निश्चयता हमारे ज्ञानेन्द्रियों (प्राण) की उपलब्धि नहीं है। पवित्र आत्मा हमारी आत्मा को निरन्तर परमेश्वर की संतान होने की साक्षी अर्थात् उद्धार की निश्चयता प्रदान करते हुए “हे अब्बा हे पिता” कह कर उसे पुकारने की सामर्थ्य भी देता है।

“यदि हम संतान हैं तो उत्तराधिकारी भी – परमेश्वर के उत्तराधिकारी और मसीह के सह-उत्तराधिकारी जबकि हम वास्तव में उसके साथ दुःख उठाते हैं कि उसके साथ महिमा भी पाएँ” (रोमियों 8:17)। “यदि हम संतान हैं तो उत्तराधिकारी भी”। उत्तराधिकार रिश्तेदारी के सम्बन्ध पर आधारित होता है। इसीलिए परमेश्वर से (नया) जन्म प्राप्त व्यक्ति उसका उत्तराधिकारी और उसके “पुत्र” के साथ सह-उत्तराधिकारी हो जाता है। यह एक बेहद महत्वपूर्ण सच्चाई है क्योंकि किसी स्वर्गदूत, साराप या करुब के बारे में भी यह बात नहीं कही गई है कि वे परमेश्वर के

उत्तराधिकारी होने का विशेषाधिकार पाए हैं। उद्धार-प्राप्त व्यक्ति को प्रभु परमेश्वर तथा उसकी समस्त आशीषें उत्तराधिकार स्वरूप मिल जाती हैं। कितनी अद्भुत आशीष! जबकि "वास्तव में हम उसके साथ दुःख उठाते हैं कि उसके साथ महिमा भी पाएं"। यहाँ "दुःख" उठाने के लिए यूनानी भाषा का जो मूल शब्द इस्तेमाल हुआ है, वही शब्द पहला कुरिन्थियों 12:26 में प्रयोग किया गया है : "यदि एक अंग दुःख पाता है तो उसके साथ सब अंग दुःख पाते हैं।" रोमियों के आठवें अध्याय के उपर्युक्त सत्रहवें पद पर ध्यान दें कि "उसके साथ दुःख" उठाना स्वैच्छिक नहीं है बल्कि उससे सम्बन्ध का अनिवार्य परिणाम (तकाज़ा) है। यदि मेरे पैर के अंगूठे को चोट लगती है तो मेरे पूरे शरीर में इसकी प्रतिक्रिया होती है। मसीह और उसकी देह के सदस्यों के बारे में भी यही बात सच है। इस प्रकार, मसीह के साथ सह-उत्तराधिकारी तथा उसकी देह के सदस्य होने के कारण, सभी विश्वासियों का इस पतित संसार में जीवित मसीह की देह के प्रत्येक सदस्य द्वारा सहे जाने वाले दुःख-दर्द में सहभागी होना स्वाभाविक है।

*"क्योंकि मैं यह समझता हूँ कि वर्तमान समय के दुःखों की तुलना करना आनेवाली महिमा से जो हम पर प्रकट होने वाली है, उचित नहीं" (रोमियों 8:18)। उपहास, कोड़ों की मार, जंजीरों में बांधकर बंदीगृह में कैद, पत्थरों के प्रहार, आरों से चीरा जाना, प्रलोभन-परीक्षाएं, तलवार से काटा जाना, भेड़ों-बकरों की खाल पहने भटकते रहना, दरिद्रता, संकटग्रस्तता और अनगिनत भयंकर यातनाओं को सहते हुए इधर-उधर भटकते फिरना (इब्रा0 11:35-38)। विश्वासीजन भावी महिमा पर दृष्टि लगाकर दुनियाँ की इन घोर*

यातनाओं एवं विपत्तियों को सहता रहता है, क्योंकि मसीह के पुनरागमन के समय प्रकट होने वाली महिमा इन अस्थाई दुःख, दर्द एवं यातनाओं को समाप्त कर देगी। उस अद्भुत महिमा के समक्ष, इन पार्थिव पीड़ाओं की याद भी नहीं रह जायेगी। विश्वासियों द्वारा ईश्वरीय योजनानुसार सहा गया कठिन से कठिन दुःख-दर्द भी कलीसिया में और कलीसिया के द्वारा प्रकट होने वाली भावी महिमा के समक्ष नगण्य साबित होगा (दू0 कुरि0 4:17)।

*“क्योंकि सृष्टि बड़ी व्यग्रता से परमेश्वर के पुत्रों के प्रकट होने की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही है। क्योंकि सृष्टि व्यर्थता के अधीन कर दी गई, परन्तु अपनी ही इच्छा से नहीं, वरन् उसके कारण जिसने उसे अधीन कर दिया, इस आशा में कि सृष्टि स्वयं भी विनाश के दासत्व से मुक्त होकर परमेश्वर के संतानों की महिमा की स्वतंत्रता प्राप्त करे। क्योंकि हम जानते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि मिलकर प्रसव-पीड़ा से अभी तक कराहती और तड़पती है”* (रोमियों 8:19-22)। इन पदों की सच्चाई का दुनियावी लोगों को जरा सा भी ज्ञान नहीं है। विकासवादी अपनी कहानी सिखाते हैं कि दुनिया कहाँ से आई और कहाँ जा रही है। परन्तु यहाँ परमेश्वर का वचन आने वाली ‘सृष्टि’ की बात कर रहा है – समस्त सृष्टि बड़ी उत्सुकता, प्रत्याशा और व्यग्रता से परमेश्वर के पुत्रों के प्रकट होने की बाट जोह रही है। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब प्रभु यीशु हमें स्वर्ग ले जाएगा और तब हम समस्त दुःख, बीमारी एवं मृत्यु को पार कर जाएंगे। उस समय यह पृथ्वी भी उस श्राप से छुटकारा पा जाएगी जिसके अधीन की गई है।

“और न केवल यह, परन्तु स्वयं हम भी जिनके पास आत्मा का प्रथम फल है, अपने आप में कराहते हैं और अपने लेपालक पुत्र होने और देह के छुटकारे की बड़ी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे हैं” (रोमियों 8:23)। यद्यपि प्रभु परमेश्वर ने हमें बहुत सी (आत्मिक) आशिषें प्रदान की हैं, तब भी हम उस दिन का बड़ी उत्सुकता से इन्तजार कर रहे हैं जब अन्ततः इस पापी व श्रापित देह से छुटकारा पाएंगे। उस दिन हमें एक नई स्वर्गिक देह मिलेगी जो दुःख, बीमारी और मृत्यु से मुक्त रहेगी। अपनी इस अवस्था को कुछ इस प्रकार समझें कि : स्वर्गिक नागरिकता पाने के बावजूद, वर्तमान में सृष्टि की वेदना के साथ कराहने वाली देह में रखे गये हैं (दू0 कुरि0 5:1-2)। लेकिन इस सब में हम परमेश्वर की भलाई का ही अनुभव करते रहते हैं। क्योंकि विश्वासी के जीवन में प्रभु परमेश्वर अपनी पवित्र आत्मा द्वारा वास करते हुए, जब तक उसके पार्थिव शरीर का छुटकारा नहीं होता, ढाँढस, हियाव एवं अगुवाई प्रदान करता है। प्रभु परमेश्वर ने अदन की वाटिका में मनुष्य की देह-रचना के द्वारा मनुष्य की सृष्टि की शुरुआत की और मनुष्य की देह के उद्धार (छुटकारे) के द्वारा इसका समापन करेगा।

“क्योंकि आशा में हमारा उद्धार हुआ है, परन्तु आशा जो दिखाई देती है, आशा नहीं; क्योंकि जो किसी वस्तु को देखता है वह उसकी आशा क्यों करेगा? यदि हम उसकी आशा करते हैं जिसे नहीं देखते तो धीरज से उत्सुकतापूर्वक उसकी प्रतीक्षा करते हैं” (रोमियों 8:24-25)। “आशा” को असंदिग्ध, सुनिश्चित अर्थात् विश्वासपूर्ण प्रत्याशा की संज्ञा दे सकते हैं। यानि पूरे भरोसे के साथ

किसी बेहतर चीज की प्रत्याशा रखना। उस चीज को अब तक नहीं देखने के कारण, परमेश्वर के अनुग्रह के द्वारा हमारे जीवन में धैर्यपूर्ण आशा उत्पन्न होती है। अर्थात् परमेश्वर के संतानों की भावी स्वतंत्रता की महिमा के लिए धैर्यपूर्ण प्रतीक्षा (इब्रा0 11:1)।

*“इसी रीति से आत्मा भी हमारी दुर्बलता में सहायता करता है; क्योंकि हम नहीं जानते कि हमें प्रार्थना किस प्रकार करना चाहिए, परन्तु आत्मा स्वयं भी ऐसी आहें भर भर कर जो अवर्णनीय हैं हमारे लिए विनती करता है, और हृदयों को जांचने वाला जानता है कि आत्मा की मनसा क्या है, क्योंकि वह पवित्र लोगों के लिए परमेश्वर के इच्छानुसार विनती करता है”* (रोमियों 8:26-27)। बहुत से मसीही अपनी वाक्पटुता एवं सुन्दर शब्दावली की प्रार्थनाओं के द्वारा स्वयं को, अन्य लोगों को तथा परमेश्वर को प्रभावित करने की कोशिश (खुशामद) करते हैं। परन्तु पवित्र आत्मा द्वारा चलाए जाने वाले ऐसा नहीं करते, क्योंकि वे अपनी जिन्दगी की आवश्यकताओं एवं अयोग्यताओं की गम्भीरता के प्रति जागरूक होते हैं। हाँ, पिता के दाहिने ओर (विराजमान) मसीह हमारे लिए विनती करता है, परन्तु यहाँ हमारी प्रत्येक आवश्यकता को जानने वाला पवित्र आत्मा हमारे भीतर विनती करता है। हाँ, पवित्र आत्मा यह सब जानते हुए “आहें भर भर कर” हमारी अन्तरात्मा में विनती करता है। ध्यान दें कि उसके इस कराहने को “अवर्णनीय” बताया गया है (इफि0 6:18; यहूदा-20)। इससे यह प्रतीत होता है कि हमारी ऐसी आवश्यकताएं भी हैं जिन्हें हमारा मस्तिष्क न तो समझ सकता है और न ही इनको शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है। ऐसी अवस्था

में पिता परमेश्वर ही 'हृदयों को जानता' है, ताकि अन्तर्वासी पवित्र आत्मा जिस बात के लिए 'आहें भर' (विनती कर) रहा है, उसकी पूर्ति करे। हमें जैसी प्रार्थना करनी चाहिए, वैसी प्रार्थना करना नहीं आता; किन्तु पवित्र आत्मा हमारे लिए "परमेश्वर की इच्छानुसार" विनती करता है :- अर्थात् परमेश्वर के स्वभाव के "अनुसार" जिसके हम सहभागी हो गये हैं; हमारी आवश्यकता के "अनुसार" जिसे वह बेहतर जानता-समझता (परखता) है; हमारे लिए (भावी) खतरों के "अनुसार" जिन्हें वह पहले से ही देखता-समझता है, और हमारे प्रति परमेश्वर की समस्त इच्छा-योजना के "अनुसार" प्रार्थना करता है।

*"और हम जानते हैं कि जो लोग परमेश्वर से प्रेम रखते हैं उनके लिए वह सब बातों के द्वारा भलाई को उत्पन्न करता है, अर्थात् उन्हीं के लिए जो उसके अभिप्राय के अनुसार बुलाए गये हैं"* (रोमियों 8:28)। परमेश्वर पर भरोसा रखने वाले उसके समस्त प्रेमियों के लिए "वह सब बातों के द्वारा भलाई" ही उत्पन्न करता है। हमारे चहुँओर परमेश्वर द्वारा सृजित सब चीजें तथा हम में, हमारे द्वारा एवं हमारे लिए भलाई उत्पन्न करने हेतु परमेश्वर की अनुमति से हमारे जीवन में आने वाली सब बातों, वस्तुओं, व्यक्तियों, घटनाओं तथा परिस्थितियों के बारे में गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करने पर इस बात के प्रति पक्का भरोसा व शांति बढ़ती जाती है कि वास्तव में "सब बातें मिल कर भलाई ही को उत्पन्न" कर रही हैं। बेशक, हमारे प्रति परमेश्वर की इच्छा-योजना हमारी सर्वोत्तम भलाई के लिए है (इफि0 1:11; यिर्म0 29:11)। हाँ, चाहे उजाला हो या

अंधेरा, सुख हो या दुःख, कड़वाहट हो या मिठास और चाहे सम्पन्नता हो या समस्याएं (दू० कुरि० 4:17)। इसके संदर्भ पर ध्यान दें! "जो उसके अभिप्राय के अनुसार बुलाए गये हैं"। यहाँ परमेश्वर की सर्वसत्ता रूपी सच्चाई की अनदेखी नहीं की जा सकती। यहाँ अट्टाइसवें पद में परमेश्वर के प्रेमियों को उसके अभिप्राय के अनुसार "बुलाए गये" लोग (दू० तीमु० 1:9) परिभाषित किया गया है (आमंत्रित लोग नहीं)। रोमियों के इस अध्याय के इससे आगे के सभी पदों में सर्वसत्ताधारी प्रभु परमेश्वर को ही सर्वोच्च श्रेय दिया गया है। हमारे जीवन में अपने उद्देश्य-योजना को पूरा करने हेतु भली-बुरी सब बातों का उपयोग करने का उसने वायदा किया है (दू० तीमु० 1:9; इफि० 3:11)। हमारे लिए उसका अभिप्राय या उसकी उद्देश्य-योजना क्या है? अगले पद पर ध्यान दें।

*"क्योंकि जिन के विषय में उसे पूर्वाज्ञान था, उसने उन्हें पहिले से ठहराया भी, कि वे उसके पुत्र के स्वरूप में हो जाएँ, जिससे कि वह बहुत-से भाइयों में पहिलौटा ठहरे"* (रोमियों 8:29)। इस पद का प्रारम्भिक शब्द "क्योंकि" अट्टाइसवें पद से इसके सम्बन्ध को दर्शाता है। अट्टाइसवें पद के "अभिप्राय" अर्थात् उद्देश्य शब्द का भावार्थ यहाँ स्पष्ट होने लगता है। जिनको वह पहिले से ही जानता था उनके लिए उसका अभिप्राय यहाँ सुस्पष्ट है। पहले "पूर्वाज्ञान", तत्पश्चात् जिनके बारे में "पूर्वाज्ञान" है उनके योग्य योजना (अर्थात्, नियति, उद्देश्य या लक्ष्य)। प्रभु परमेश्वर ने अपने विश्वासियों के लिए एक खास लक्ष्य "पहिले से ठहराया" है – अर्थात् उसके सभी विश्वासी "उसके पुत्र के स्वरूप में हो जाएँ"।

उनमें कोई कमी न रहे, बल्कि मसीह के स्वरूप में हों। **मसीह के स्वरूप में ढालना** ही प्रभु परमेश्वर का हमारे जीवन के लिए प्रमुख उद्देश्य है (गला0 4:19)। "अपने पुत्र के स्वरूप में होने के लिए पहले से ही निर्धारित कर दिया जिससे कि वह (मसीह) बहुत से भाइयों में पहिलौठा ठहरे"। जगत की सृष्टि करने से पूर्व पिता परमेश्वर ने यह निर्धारित कर दिया था कि "वह पहिलौठा" ठहरे। "मसीह में" होना और "मसीह के स्वरूप" में होना। वह अपनी सृष्टि को इसी सर्वोच्च आशिष से विभूषित करना चाहता है। वह हमें ऐसी आशीषपूर्ण अवस्था प्रदान करता है; और मसीह हमें "भाई कहने से नहीं लजाता," क्योंकि हम सब एक ही मूल से हैं (इब्रा0 2:11)। यह परमेश्वर का अनुग्रहपूर्ण कार्य है। उसने सिर्फ मसीह को भेज कर ही आशीष नहीं दिया, बल्कि मसीह के साथ (उसके स्वरूप की समानता का सहभागी होने की) आशीष दी है।

*"फिर जिन्हें उसने पहिले से ठहराया है, उन्हें बुलाया भी; और जिन्हें बुलाया, उन्हें धर्मी भी ठहराया; और जिन्हें धर्मी ठहराया, उन्हें महिमा भी दी है"* (रोमियों 8:30)। जगत की रचना से पूर्व, अर्थात् हमारे पैदा होने से पहले ही (बाद में ऐसा करना, पहले से ही चुनना नहीं होता) प्रभु परमेश्वर ने यह निर्धारित (पूर्व निश्चित) कर दिया था कि हमें 'वह अपने पुत्र के स्वरूप में' ढालेगा। अतः अपने सुसमाचार के द्वारा उसने हम पापियों को बुलाया कि हम अपने उद्धारकर्ता (छुड़ाने वाले) पर विश्वास करें। चूंकि हम अट्ठाइसवें पद के ईश्वरीय "अभिप्राय" शब्द के संदर्भ में विचार कर रहे हैं, इसलिए "बुलाए गये" के भावार्थ को ईश्वरीय दृष्टिकोण से



समझना है। ईश्वरीय बुलाहट में प्रभु परमेश्वर ही उनके जीवन-व्यवहार एवं जीवन-लक्ष्य को निर्धारित (भावी नियति-निर्धारण) करता है जिन्हें उसने पहले से जाना एवं इसके लिए पहिले से ठहराया है। इसीलिए "जिन्हें बुलाया, उन्हें धर्मी भी ठहराया"। इतना ही नहीं, बल्कि "उन्हें महिमा भी दी" है। पिछले पन्नों से सच्चाइयों की जिस अद्भुत श्रृंखला के बारे में हम विचार करते आ रहे हैं, उनका कितना सुन्दर समापन – "महिमान्वित"! इस प्रकार प्रभु के संतगण महिमा की ओर अग्रसर हैं। **मसीह** में पिता परमेश्वर हमें **पहिले** से ही जानता था, और महिमान्वित मसीह में पिता परमेश्वर ने जगत की उत्पत्ति से पूर्व हमें **चुन लिया** था। अतः हम महिमा की ओर बढ़ रहे हैं; वह महिमा जो परमेश्वर के वचन के अनुसार हमारी है – महिमान्वित देह; पाप व मृत्यु के बंधन से मुक्त। जो कुछ मसीह का है, हमारा है (परमेश्वर की कृपा से)।

*"अब हम इन बातों के विषय में क्या कहें? यदि परमेश्वर हमारे पक्ष में है, तो कौन हमारे विरुद्ध हैं?"* (रोमियों 8:31)? पौलुस ने इस पद में मसीही विश्वास का एक अत्यन्त अद्भुत (उच्च) विचार व्यक्त किया है। ऐसा लगता है कि इसमें प्रश्नकर्ता और विजेता दोनों के स्वर हैं? ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि वह यह कह रहा हो कि **पूर्वज्ञान** से लेकर **महिमा** पाने तक की इन बातों के बारे में हम क्या कहें? इनके प्रति सशंकित होना, इनका इनकार करना है। इनके बारे में हमारा क्या कहना (विचार) है? आइए, पौलुस के साथ हम भी यह कहें कि "परमेश्वर हमारी ओर है"। जगत का सृष्टिकर्ता, सब कुछ संभालने वाला, स्वयं उद्धारकर्ता प्रभु परमेश्वर

“हमारे पक्ष में है”। इसके आगे के चुनौतीपूर्ण वाक्य पर ध्यान दें :  
“तो कौन हमारा विरोधी हो सकता है”? सुसमाचार विरोधियों द्वारा  
घोर सतावट से पौलुस भली-भाँति परिचित था। इसके बावजूद वह  
यह चुनौती देता है: “कौन हमारे विरुद्ध है”?

“वह जिसने अपने पुत्र को भी नहीं छोड़ा परन्तु उसे हम  
सब के लिए दे दिया, तो वह उसके साथ हमें सब कुछ उदारता से  
क्यों न देगा” (रोमियों 8:32)? यह वही परमेश्वर है जो हमारे  
“पक्ष” में है, और इस बत्तीसवें पद में बतायी गई सच्चाई इसका  
सबूत है। प्रभु परमेश्वर ने अपना प्रेम हम पर उड़ेल दिया है, अपना  
हृदय हमारे लिए खोल दिया है। उसने अपना सर्वोत्तम, अपना सब  
कुछ अर्थात् अपना “एकलौता पुत्र” यानि “मसीह” को भी हमारे  
लिए दे दिया (बलि कर दिया)। अब “उसके साथ सब कुछ”  
बहुतायत से प्रदान करता है – समस्त अनुग्रह, दया, प्रेम एवं अन्य  
सब आशीषें। यहाँ यह भी समझना महत्वपूर्ण है कि परमेश्वर द्वारा  
हमें अब प्रदान की जाने वाली आशीषें “मसीह” रूपी (सर्वोत्तम)  
आशीष की तुलना में गौण (नगण्य) हैं।

“परमेश्वर के चुने हुओं पर कौन दोष लगाएगा? परमेश्वर  
ही है जो धर्मी ठहराता है” (रोमियों 8:33)। अब कोई हमें दोष-दण्ड  
नहीं दे सकता, क्योंकि सर्वोच्च जज अर्थात् प्रभु परमेश्वर ने हमारे  
समस्त पापों को क्षमा कर दिया है। ऐसा नहीं है कि अब हम गलती  
या भूल-चूक नहीं करते, बल्कि खास महत्वपूर्ण सच्चाई यह है कि  
“परमेश्वर हमारी ओर” (पक्ष में) है। ध्यान दें कि यहाँ प्रभु परमेश्वर  
की प्रमुखता एवं महत्ता पर विशेष जोर दिया गया है। वही जज है,

हम उसके द्वारा चुने हुए जन हैं। हाँ, वही हमें धर्मी (निर्दोष) ठहराया है; अतः कौन हम पर दोष लगाएगा? क्या ऐसा कोई है जो परमेश्वर की सर्वोच्च अदालत में उस पर दोषारोपण कर सकता है जिसे स्वयं प्रभु परमेश्वर ने निर्दोष या धर्मी ठहराया है (यशा0 50:8)? हाँ, शैतान हमारी निन्दा कर सकता है, हमें दोषी ठहराने की निष्फल कोशिश कर सकता है, लेकिन हमें दोषी सिद्ध किए जाने व दण्डित किए जाने का दिन सदा सर्वदा के लिए समाप्त हो चुका है। निःसंदेह प्रभु परमेश्वर हमारा पक्ष लेगा।

*“वह कौन है जो दोष लगाएगा? मसीह यीशु ही है जो मरा, हाँ, वरन् वह मृतकों में से जिलाया गया, जो परमेश्वर के दाहिनी ओर है, और हमारे लिए निवेदन भी करता है”* (रोमियों 8:34)। मसीह यीशु को पुनः जीवित करके पिता परमेश्वर ने यह प्रदर्शित एवं प्रमाणित कर दिया कि वह उसकी मृत्यु को हमारे पापों के दण्ड-मूल्य के रूप में ग्रहण कर चुका है। अब मसीह मुर्दा नहीं है। वह तो पुनः जीवित किया जा चुका है। अब वह परमेश्वर के दाहिनी ओर विराजमान है, सिर्फ सत्ता और सम्मान के लिए नहीं बल्कि हमारे लाभ के लिए। स्मरण रहे कि परमेश्वर हमारी ओर है (8:31); अन्तर्वासी पवित्र आत्मा हमारे लिए विनती करता है, और अब इस चौंतीसवें पद के अनुसार मसीह भी हमारे लिए विनती कर रहा है। कितना अद्भुत उद्धार जिसमें त्रिएकत्व के तीनों व्यक्ति निरन्तर हमारे (लाभ के) वास्ते (हमारे पक्ष में) सक्रिय हैं।

*“कौन हम को मसीह के प्रेम से अलग करेगा? क्या क्लेश या संकट, या सताव, या अकाल या नंगाई, या जोखिम, या*

तलवार” (रोमियों 8:35)? किसी विरोधी का भय नहीं, अभाव का भय नहीं, दोष-दण्ड का भय नहीं और अब यहाँ यह देखते हैं कि मसीह के प्रेम से अलगाव का भय नहीं। यहाँ “कौन” शब्द परमेश्वर के शत्रु शैतान की ओर इंगित करता है। शैतान विभिन्न प्रकार से हमें परमेश्वर के प्रेम से दूर करने का प्रयास करता है – क्लेश, संकट, सताव, अकाल, नग्नता, जोखिम, तलवार इत्यादि के द्वारा। इस सूची में पौलुस पहले क्लेश का जिक्र करता है। क्लेश द्वारा शैतान एक भी संत को मसीह के प्रेम से अलग करने में सफल नहीं हुआ है (प0 थिस्स0 1:6 एवं 3:3; यूहन्ना 16:33)। सताव-संकट के द्वारा भी वह किसी विश्वासी को प्रभु के प्रेम से अलग नहीं कर सका है। इसके बाद अकाल का जिक्र आता है। हाँ, अकाल। क्या भूख से मरने का मतलब यह हुआ कि परमेश्वर हम से प्रेम नहीं रखता? नहीं। ऐसी बात नहीं है। नग्नता के बारे में क्या कहें? यदि हमारे पास कपड़े या वस्त्र नहीं हैं तो क्या परमेश्वर हमसे प्रेम नहीं रखता? नहीं, ऐसा नहीं है। इस मसीह विरोधी जगत में भूखा-प्यासा या निर्वस्त्र होना कोई अनहोनी बात नहीं है, लेकिन इसके बावजूद हम अपने परमेश्वर के प्रेम-पात्र हैं। इसके बाद जोखिम और तलवार का जिक्र आया है। क्या खतरे और युद्ध का मतलब यह हुआ कि प्रभु परमेश्वर हमसे प्रेम नहीं रखता? नहीं, ऐसा नहीं है?

“जैसा लिखा है, ‘तेरे लिए हम दिन भर घात किए जाते हैं; हम वध होने वाली भेड़ों के सदृश समझे जाते हैं’” (रोमियों 8:36)। इस पद में परमेश्वर के विश्वासियों की सच्ची परिभाषा या तस्वीर दी गई है। प्रभु की कृपा से प्राप्त प्रत्येक दिन (दिन भर या लगातार)

घात किए (मौत को सौंपे) जाते हैं, और "वध होने वाली भेड़ों" के समान समझे जाते हैं। सच्चे प्रभु के विश्वासियों की यही सच्ची हालत (अवस्था) होती है। हम मसीह की मारी गई और बध की जाने वाली भेड़े हैं (दू० कुरि० 4:10-11)।

"परन्तु इन सब बातों में हम उसके द्वारा जिसने हम से प्रेम किया जयवन्त से भी बढ़कर हैं" (रोमियों 8:37)। क्या बाइबल भयावह, किन्तु अद्भुत पुस्तक नहीं है? हमें "वध होने वाली भेड़" के समान, किन्तु "जयवन्त से भी बढ़कर" दर्शाया गया है (दू० कुरि० 2:14; प० कुरि० 15:57)। यहाँ स्मरणीय बात यह है कि हम **उसके** (प्रभु के) द्वारा जयवन्त से बढ़कर हैं, अपनी किसी कोशिश या क्रिया-कलाप के द्वारा नहीं।

"क्योंकि मुझे पूर्ण निश्चय है कि न मृत्यु न जीवन, न स्वर्गदूत न प्रधानताएँ, न वर्तमान न भविष्य, न शक्तियाँ, न ऊँचाई न गहराई, और न कोई सृजी हुई वस्तु हमें परमेश्वर के प्रेम से जो हमारे प्रभु यीशु मसीह में है, अलग कर सकेगी" (रोमियों 8:38-39)। उन्तालीसवें पद के इन खास शब्दों पर ध्यान दें : "परमेश्वर के प्रेम से जो हमारे प्रभु यीशु मसीह में है" कोई चीज हमें अलग नहीं कर सकती। पौलुस इसीलिए यह घोषणा करता है कि "मुझे पूर्ण निश्चय है"। किस बात का पूर्ण निश्चय? इस सच्चाई पर पूरा भरोसा व निश्चय कि परमेश्वर के प्रेम से हमें कुछ (या कोई) भी अलग नहीं कर सकेगा। यहाँ तक कि वह चीज भी हमें "मसीह में" प्राप्त परमेश्वर के प्रेम से अलग करने में सफलता नहीं पाएगी जिससे सब लोग डरते हैं - अर्थात् मृत्यु भी (इब्रा० 2:14-15)। इसके अलावा

जीवन की विभिन्न परिस्थितियाँ भी परमेश्वर के प्रेम से हमें नहीं अलग कर सकतीं। **स्वर्गदूत** भी हमें परमेश्वर के प्रेम से अलग नहीं कर सकते – चाहे अच्छे स्वर्गदूत हों या पतित। इफिसियों के पहले अध्याय के इक्कीसवें पद तथा उसके छठवें अध्याय के बारहवें पद से यह ज्ञात होता है कि अदृश्य **प्रधानता-अधिकार** की विभिन्न श्रेणियाँ हैं, किन्तु यह भी हमें परमेश्वर के प्रेम से अलग करने में कामयाब नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त, न तो **वर्तमान** परिस्थितियाँ और न ही **भविष्य** की परिस्थितियाँ अर्थात् न तो आज का कुछ और न ही आने वाले कल का कुछ हमें परमेश्वर के प्रेम से अलग कर सकता है। अन्य कोई **शक्तियाँ** अर्थात् जादू-टोना, गुह्य विद्या, मोहन-शक्ति (मंत्र-मुग्धता) या प्रेतवाद जैसी शक्तियाँ भी हमें परमेश्वर के प्रेम से अलग नहीं कर सकतीं। यहाँ तक कि कोई **ऊँचाई** या **गहराई** भी हमें परमेश्वर के प्रेम से अलग नहीं कर सकती। खगोल-विज्ञानिक इस सम्पूर्ण सृष्टि (जगत, यूनिवर्स) की विशालता से हमें भयभीत व आश्चर्य-चकित कर देते हैं। परन्तु प्रभु यीशु सम्पूर्ण जगत अर्थात् समष्टि (सारे स्वर्गिक स्थानों या आकाशों) को पार करके पिता परमेश्वर के दाहिनी ओर बैठा है। कोई भी ऊँचाई या गहराई “मसीह में” प्राप्त परमेश्वर के प्रेम से हमें अलग नहीं कर सकती। हाँ, अन्य कोई सृजित वस्तु व व्यक्ति (मैं और आप) भी परमेश्वर के प्रेम से हमें अलग नहीं कर सकते। इससे हमारा सारा डर-भय समाप्त हो जाना चाहिए। स्मरण रहे कि परमेश्वर का यह प्रेम “हमारे प्रभु यीशु मसीह में है” (यूहन्ना 17:26)।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, इस पुस्तक का उद्देश्य रोमियों के प्रत्येक पद का अध्ययन करना नहीं है। अतएव इस पत्री के नौवें, दसवें और ग्यारहवें अध्याय के बारे में यहाँ कुछ खास अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया है। बहरहाल, इन अध्यायों की प्रमुख बातों का सारांश प्रस्तुत किया जा रहा है।

रोमियों के नौवें, दसवें और ग्यारहवें अध्यायों में (सुसमाचार के प्रसंग) में इस्राएल के साथ ईश्वरीय व्यवहार की चर्चा की गई है। प्रभु परमेश्वर ने उन्हें आशीष देने का वायदा किया था, किन्तु उनके अविश्वास के कारण अभी उन्हें एक राष्ट्र के रूप में एक किनारे कर (रख) दिया है। इस्राएली राष्ट्र का इस प्रकार एक ओर रखा जाना ईश्वरीय कालक्रम के प्रसंग में है। वर्तमान समय में परमेश्वर "गैरयहूदियों में से उसके नाम के निमित्त" चुने हुए लोगों (प्रेरित0 15:14) को उसके पास आने का अवसर प्रदान किया है। इसके बाद प्रभु स्वयं वापिस आएगा और यरुशलेम में अपने 'निवास-स्थान' का पुनः निर्माण करेगा। यद्यपि रोमियों के 9-11 अध्यायों में इससे पहले के आठ अध्यायों की भांति हमारे उद्धार अथवा मसीह में हमारी स्थापना सम्बन्धी सच्चाई की व्याख्या नहीं है, तथापि परमेश्वर की योजना में हमारे स्थान के बारे में तथा इस्राएल के स्थान के बारे में इन अध्यायों में प्रकाशना पायी जाती है। इस प्रसंग में इस प्रमुख विचार को नहीं भूलना चाहिए कि परमेश्वर के प्रेम से हमें कुछ भी अलग नहीं कर सकता। इस सच्चाई के प्रकाश में यहूदियों के बारे में क्या कहा जाए? नौवें अध्याय में पौलुस यह याद दिलाता है कि हमारा प्रभु सर्वशक्तिमान, सर्वसत्ताधारी, परम

प्रधान, सृष्टिकर्ता परमेश्वर है। उसके समक्ष सब लोग पापी हैं और उससे कुछ भी पाने के लायक नहीं है। अतः वह जैसा उचित समझता है, वैसा उनके साथ व्यवहार करने का अधिकार रखता है।

इसके अतिरिक्त पौलुस यह भी कहता है कि यहूदियों को यह देखकर आश्चर्यचकित नहीं होना चाहिए कि प्रभु परमेश्वर ने उन्हें कुछ समय के लिए एक किनारे (अनदेखी, उपेक्षा) कर दिया है, क्योंकि पुराना नियम के नबियों ने यहूदियों के इस दरकिनार किए जाने और गैरयहूदियों के इस्तेमाल किए जाने की भविष्यवाणी की थी। सौ बात की एक बात : परमेश्वर, सर्वशक्तिमान परमेश्वर है, वह किसी के प्रति जवाबदेह नहीं और जैसा चाहे वैसा कर सकता है।

उनके अहंकार, विद्रोह एवं अविश्वास के कारण प्रभु परमेश्वर ने इस्राएल को अस्वीकार कर दिया। उनके तिरस्कृत होने से गैरयहूदियों के लिए मसीह यीशु पर विश्वास के द्वारा परमेश्वर के समक्ष ग्रहण किए जाने का द्वार खुल गया। ग्यारहवें अध्याय में यह दर्शाया गया है कि इस्राएल (राष्ट्र) के अस्वीकृत (दरकिनार) किए जाने का तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि परमेश्वर यहूदी लोगों का उद्धार नहीं चाहता। पौलुस के अनुसार यहूदी लोगों के इतिहास में वे जब-जब परमेश्वर से दूर (विमुख) हुए, तब-तब उनके मध्य (सदैव) कुछ न कुछ ऐसे लोग थे जो अपने प्रभु परमेश्वर के प्रति विश्वास में बने रहे। अतः पौलुस यह दर्शाता है कि यद्यपि इस्राएली राष्ट्र (जाति) को प्रभु परमेश्वर अस्वीकार (या दरकिनार) किए हुए है, लेकिन एक दिन ऐसा आएगा जब वे अपने पापीपन को पहचान कर मसीह यीशु पर विश्वास रखने के द्वारा प्रभु परमेश्वर की ओर फिरेंगे और वह उन्हें उद्धार प्रदान करेगा।



## ग्यारह

“अतः हे भाइयों, मैं परमेश्वर की दया का स्मरण दिलाकर तुमसे आग्रह करता हूँ कि तुम अपने शरीरों को जीवित, पवित्र और ग्रहणयोग्य बलिदान कर के परमेश्वर को समर्पित कर दो। यही तुम्हारी आत्मिक आराधना है” (रोमियों 12:1)। प्रभु यीशु के दास पौलुस को उसकी ओर से हमें आदेश देने का अधिकार था, लेकिन उसने प्रेमवश “आग्रह” किया, आदेश नहीं दिया। रोमियों की पुस्तक को मसीहियत की सूक्ष्म तस्वीर कहा जा सकता है। इसके पहले अध्याय से पांचवें अध्याय तक यह दर्शाया गया है कि “मसीह हमारे लिए मरा”; छठवें और सातवें अध्याय में यह दर्शाया गया है कि “हम मसीह के साथ मर गए”; आठवां अध्याय यह सिखाता है कि विश्वासी के ऊपर “आत्मा का नियंत्रण” होता है। आइए, अब हम नौवें से ग्यारहवें अध्याय से आगे अर्थात् बारहवें से सोलहवें अध्यायों पर विचार करें, जिनमें ‘ख्रीस्त-जीवन’ जीने का प्रोत्साहन पाया जाता है। ध्यान दें कि यह (मसीही) जीवन जीने की प्रेरणा कहाँ मिलती है – “परमेश्वर की दया” में। यहाँ रोमियों की पुस्तक में वर्णित उन कुछेक परमेश्वर-प्रदत्त दयापूर्ण आशीषों पर ध्यान देना हितकर होगा जिनसे ख्रीस्त-जीवन जीने की सामर्थ्य एवं इच्छा मिलती है – (1) धर्मी ठहराया जाना : निर्दोष घोषित होना (2) मसीह के साथ पहचान (एकता) : पाप के प्रति मृतक, व्यवस्था के प्रति मृतक और मसीह में स्थापित (3) व्यवस्था के बजाय अनुग्रह के अधीन : व्यवस्था मनुष्य के कर्म पर जोर देती है, अनुग्रह परमेश्वर के कार्य पर (4) अन्तर्वासी (पवित्र) आत्मा : दोष-दण्ड से मुक्त

और व्यवस्था एवं पाप के अधिकार-सत्ता से आजादी (5) हमारे जीवन के लिए परमेश्वर का उद्देश्य : मसीह के स्वभाव (स्वरूप) में ढलते जाना (6) भावी महिमा : वर्तमान दुःख-कष्ट भावी महिमा की तुलना में नगण्य हैं (7) प्रभु से वियोग असम्भव : मसीह में पूर्णरूपेण सुरक्षित (संरक्षित) (8) परमेश्वर की विश्वसनीयता : इस्राएल के लिए ईश्वरीय योजना की प्रकाशना इसका एक सच्चा (ऐतिहासिक) उदाहरण।

अब विश्वासी के जीवन पर अनुग्रह का शासन है, अतएव पौलुस "आग्रह" करता है कि 'अपने शरीरों को अर्पित कर (सौंप) दो'। परमेश्वर की दयापूर्ण (उपर्युक्त) आशीषों के द्वारा हममें ऐसा करने की हार्दिक इच्छा उत्पन्न होती है। इस ज्ञान में महान आकर्षण शक्ति पायी जाती है कि कोई हमें प्रेम करता है और हमें अनेक दयापूर्ण आशीषें प्रदान की गयी हैं (दू0 कुरि0 5:14)। यहाँ "जीवित बलिदान" की बात की गई है, जो कि परमेश्वर के लिए इस्राएलियों द्वारा वध करके चढ़ाए जाने वाले पशुओं के बलिदानों के विपरीत है। परमेश्वर की सेवा (उपासना) स्वतंत्रता है, गुलामी नहीं। परमेश्वर की सेवा (उपासना) मृत्यु में से निकल कर जीवन है (पुनरुत्थान-जीवन)। परमेश्वर के प्रति यह अर्पण "पवित्र और ग्रहणयोग्य" होना है। इस्राएलियों के चढ़ावों के बारे में परमेश्वर ने यह कहा था कि "जो कुछ वेदी को छू लेगा वह पवित्र हो जाएगा" (निर्ग0 29:37)। पुराना नियम में "वेदी" क्रूस का एक प्रतीक थी, और इसमें कोई संदेह नहीं कि (नया नियम के अनुसार) प्रत्येक पवित्र चीज को "क्रूस" छूना अत्यावश्यक है (रोमियों 6:6; गला0 2:20)।

तब पवित्र शास्त्र कहता है कि "यही तुम्हारी आत्मिक सेवा (उपासना) है"। हाँ प्रभु परमेश्वर हमसे सिर्फ यही चाहता है कि हम "अपने शरीरों" को (जीवित बलिदान स्वरूप) उसे "सौंप" दें। मसीह आ चुका है; हमारे पाप का बदला, प्रायश्चित्त या दण्ड-मूल्य दिया जा चुका है। मसीह पुनः जीवित हो चुका है, विश्वासी के जीवन में पवित्र आत्मा वास करता है और इस प्रकार सच्ची आत्मिक सेवा (उपासना) सम्भव है। विश्वास के साथ अपने शरीरों को परमेश्वर को सौंपना ही ऐसी सेवा-उपासना का प्रवेश-द्वार है।

*"इस संसार के अनुरूप न बनो, परन्तु अपने मन के नए हो जाने से तुम परिवर्तित हो जाओ कि परमेश्वर की भली, ग्रहणयोग्य और सिद्ध इच्छा को तुम अनुभव से मालूम करते रहो"* (रोमियों 12:2)। सांसारिक तौर-तरीका शैतानी सिद्धान्तों पर आधारित है; जैसे कि लालच, भौतिकवाद, अनैतिकता, अधिकार-सत्ता, स्वार्थ, स्व-अभिमान (अहंकार) इत्यादि। अतः परमेश्वर का वचन हमें यह सिखाता है कि "इस संसार के अनुरूप न बनो"। प्रेरित यूहन्ना अपनी पहली पत्री में लिखता है : "हम जानते हैं कि हम परमेश्वर से हैं और सारा संसार (सांसारिक तौर-तरीका) उस दुष्ट के वश में पड़ा है"। याकूब अपनी पुस्तक में यह लिखता है कि संसार से मित्रता रखना आध्यात्मिक व्यभिचार है (4:4)।

**उत्पत्ति** की पुस्तक के चौथे अध्याय में यह लिखा है कि "कैन यहोवा की उपस्थिति से निकल गया... और कैन ने एक नगर बसाया और वहाँ उसके वंशजों ने अनेक प्रकार के अन्वेषण किए-वीणा, बांसुरी धातु-कला तथा अन्य कई कार्य-व्यवसाय। इन

सब का एक ही उद्देश्य था – परमेश्वर बगैर जीवन बिताना और उसे भूल जाना। तब से लेकर आज तक शैतान इन्हीं घातक संसारिक रीति-विधियों के विकास में लगा हुआ है : अर्थात् संसारिक दर्शन (मानुषिक या दुनियावी सोच-समझ), संसारिक विज्ञान (परमेश्वर-विहीनता का बढ़ावा), संसारिक सरकारें या शासन-प्रशासन (मनुष्य के अहंकार को बढ़ावा), संसारिक मनोरंजन (मन-मस्तिष्क से वास्तविकता को मिटाने की कोशिश) और संसारिक धर्म-कर्म (न्याय के भय से बचाव की मानव-विवेक को झूठी तसल्ली देना)।

अतएव पौलुस प्रभु के लोगों को संसार के शैतानी सिस्टम के अनुरूप ढलने की मनाही करता है, इसके बजाय वह प्रभु के विश्वासियों को मसीह के स्वरूप में **परिवर्तित होने** (मसीह के **रूपान्तरण** सम्बन्धी मत्ती 17:2 का शब्द) के लिए प्रोत्साहित करता है। वर्तमान बुरे संसार में रहते हुए भी प्रभु के उन विश्वासियों के लिए आन्तरिक परिवर्तन या रूपान्तरण उपलब्ध है जो उसके प्रति अर्पित एवं अहं (कार) के प्रति मृतक हैं (दू० कुरि० 3:18)। ध्यान दें, यहाँ पवित्र आत्मा पर निर्भरता पर जोर दिया गया है – “मन के नए हो जाने से”। हमारा सम्पूर्ण मन-मस्तिष्क पवित्र आत्मा द्वारा नया किए जाने के लिए उसकी अधीनता में होना है। हमारे मन-मस्तिष्क का नवीनीकरण करते हुए पवित्र आत्मा हमारे ‘प्रत्येक विचार को मसीह का आज्ञाकारी बनाता है’ (तीतुस 3:5, इफि० 4:22-25; कुलु० 3:9-10; दू० कुरि० 10:5)। इस प्रकार प्रभु परमेश्वर की “भली, भावती एवं सिद्ध इच्छा अनुभव से मालूम” हो सकती है। आदि में पाप की समस्या की शुरुआत तब हुई जब

परमेश्वर की इच्छा से विमुख होकर मनुष्य अपनी इच्छा को पूरा करने में लग गया। अन्य किसी चीज से बढ़कर मनुष्य अपनी इच्छा-पूर्ति को ही महत्व देना चाहता है, मनमानी या मनमौजी जीवन बिताना चाहता है (उत्प० 2:15-17, 3:1-6)। इसीलिए रोमियों के बारहवें अध्याय के पहले दो पदों में परमेश्वर की इच्छा को जानने की दिशा में चार महत्वपूर्ण चरण दर्शाए गये हैं :

- (1) 'परमेश्वर की दया से अपने शरीरों को जीवित बलिदान के रूप में परमेश्वर को सौंपना' (12:1)। परमेश्वर की इच्छा को जानने हेतु मनुष्य की इच्छा का पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण आवश्यक है, और यह आत्म-समर्पण सिर्फ क्रूस (पर सम्पन्न ईश्वरीय कार्य की पहचान) के द्वारा ही सम्भव है, जहाँ हमारा पुराना मनुष्यत्व क्रूसित किया गया।
- (2) 'इस संसार के अनुरूप नहीं बनना है' (12:2)। अर्थात् संसारिक तौर-तरीकों के द्वारा यह सब करने की कोशिश नहीं करना है।
- (3) 'मन के नए हो जाने से परिवर्तित हो जाओ (12:2)। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, परमेश्वर की संतान के सम्पूर्ण चेतन मन को पवित्र आत्मा द्वारा नये किए जाने के लिए उसके नियंत्रण में होना अनिवार्य है।
- (4) तब 'परमेश्वर की भली, भावती एवं सिद्ध इच्छा' का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्रभु में बने रहना (यूहन्ना 15:7) या सम्पूर्ण हृदय से उस पर भरोसा रखना (नीति० 3:5-6) स्वयं को परमेश्वर के हाथों में सौंपने (रोमियों 12:1) जैसे विचार हैं। "भली,

ग्रहणयोग्य (भावती) एवं सिद्ध" इच्छा। अर्थात् हमारे लिए भली, परमेश्वर को भावती (ग्रहणयोग्य) तथा अपने आप में उसकी सिद्ध इच्छा (इपफ्रास की प्रार्थना के अनुसार) हमें "परमेश्वर की समस्त इच्छा में परिपक्व, आश्वस्त और स्थिर" बनाती जाती है (इफि0 5:10,17; कुलु0 4:12)।

*"क्योंकि मैं उस अनुग्रह के द्वारा जो मुझे दिया गया है, तुम में से प्रत्येक से कहता हूँ कि कोई भी अपने आप को जितना समझना चाहिए उस से बढ़कर न समझे; परन्तु परमेश्वर के द्वारा दिए गये विश्वास के परिमाण के अनुरूप ही सुबुद्धि से अपने आप को समझे"* (रोमियों 12:3)। बड़ा रोचक है कि इस पद में अपने आप को आवश्यकता से अधिक ऊंचा समझने के बारे में सतर्क किया गया है। स्वयं को आवश्यकता से अधिक महत्वपूर्ण मानने का बहुत प्रलोभन आता है; किन्तु ऐसे अहंकार, आत्मश्लाघा एवं अहम्मान का विश्वासी के जीवन में कोई स्थान नहीं होना चाहिए। रोमियों के इन अध्यायों में अब तक जो कुछ शिक्षा मिली उसमें भी यही देखने को मिला – यहूदी लोग गैरयहूदियों से बेहतर नहीं, और न ही गैरयहूदी लोग यहूदियों से बेहतर हैं। वास्तविकता तो यह है कि सब लोग प्रभु परमेश्वर की दया पर आश्रित हैं। अतः अपने आप को जरूरत से ज्यादा बढ़ा-चढ़ा कर महत्वपूर्ण (ऊंचा या बड़ा) मानने के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। मसीहियत हमें न तो अपने आप को बड़ा मानना (आत्म-महिमा) और न ही अपने आप को छोटा मानना (आत्मलघुता) सिखाती है; बल्कि आत्म-केन्द्रित या स्व-केन्द्रित होने के बजाय परमेश्वर-केन्द्रित होना दर्शाती है।

प्रत्येक विश्वासी को परमेश्वर की ओर से विश्वास की एक खास मात्रा (विश्वास का परिमाण) प्रदान की गई है जिससे परमेश्वर की सेवा की जानी है। "परिमाण" की बात को रोमियों के बारहवें अध्याय के छठवें पद में 'हमें दिए गये अनुग्रह के अनुसार विभिन्न वरदान' पाने के रूप में व्यक्त किया गया है। विश्वास की मात्रा (परिमाण) प्रभु परमेश्वर प्रदान करता है, न कि मैं या आप। परमेश्वर को अर्पित जीवन के द्वारा परमेश्वर की विशिष्ट इच्छा की वैयक्तिक पहचान रखने वाले ही "संयमपूर्वक अपना मूल्यांकन" करते हैं। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि इस महत्वपूर्ण पद के बाद के पद इसे समझने में सहायक हैं।

*"क्योंकि जैसे हमारे शरीर में अनेक अंग हैं और सभी अंगों का एक ही कार्य नहीं है, वैसे ही हम भी जो अनेक हैं, मसीह की एक देह हैं, और एक दूसरे के अंग हैं"* (रोमियों 12:4-5)। यहाँ पौलुस ने पहली बार 'मसीह की देह' सम्बन्धी महत्वपूर्ण सिद्धान्त का जिक्र किया है। परमेश्वर की प्रजा की विशिष्ट राष्ट्रीय पहचान (इस्राएल) के स्थान पर अब परमेश्वर के उद्धार-प्राप्त लोगों की एक नई तस्वीर पेश की गयी है। प्रभु द्वारा छुड़ाए गये लोग एक देह की तरह हैं जिसके अनेक अंग होते हैं (आंख, कान, अंगुलियाँ, अंगूठे, मांसपेशियाँ, नसें इत्यादि)। इन अंगों की विविधता के बावजूद ये एकता में कार्य करते हैं, अर्थात् प्रत्येक अंग दूसरे अंगों से जुड़ा हुआ है। बहरहाल, हमारी देह के सभी अंगों का अपना खास कार्य है। 'मसीह की देह' के बारे में भी ऐसा ही है। जैसे हमारी भौतिक देह के अनेक अंग हैं, उसी प्रकार "मसीह की देह" भी अनेक

विश्वासियों से मिलकर बनी है, और प्रत्येक के विभिन्न किन्तु महत्वपूर्ण कार्य हैं। देह के प्रत्येक अंग का ईश्वर-प्रदत्त कार्य-उद्देश्य है (इफि० २:१०); और जब ऐसा नहीं होता तब सम्पूर्ण देह के लिए कष्टकर होता है।

जैसे हमारी भौतिक देह के अंग अलग-अलग होकर कार्य नहीं कर सकते, उसी प्रकार "मसीह की देह" का प्रत्येक विश्वासी अन्य अंगों (सदस्यों) से सम्बद्ध है और उनसे जुड़े (एकता में) रहकर ही ठीक से कार्य कर सकता है। जब सब मिलजुल कर एक साथ कार्य करते हैं तो देह ठीक से कार्य करती है (१० कुरि० १२:१२-२७)। देह के अस्तित्व का उद्देश्य अपने सदस्यों की सेवा करना नहीं है; देह के अस्तित्व का उद्देश्य प्रभु यीशु मसीह की सेवा है। देह अपने संचालन के लिए किन्हीं एक-दो सदस्यों पर निर्भर नहीं है; देह तो अपने 'सिर' मसीह यीशु के द्वारा संचालित होती है। अपनी शारीरिकता की मानसिकता में हम वैयक्तिक मज़हब पसन्द करते हैं और अपनी धारणा एवं विचारों को ज्यादा महत्व देते हुए स्व-केन्द्रित जीवन-शैली में ही जीना चाहते हैं। इसके नतीज़तन विभाजन एवं अनैक्यता को बढ़ावा मिलता है। अतः एकता में कार्य करने हेतु प्रभु यीशु मसीह की अगुवाई में तथा उस पर आशा-भरोसा में जीवन व्यतीत करना अत्यावश्यक है।

*"जबकि उस अनुग्रह के अनुसार जो हमें दिया गया है, हमें विभिन्न वरदान मिले हैं, तो जिसको भविष्यद्वाणी का वरदान मिला है, वह विश्वास के परिमाण के अनुसार भविष्यद्वाणी करे; यदि सेवा का, तो सेवा में लगा रहे; जो शिक्षक है, वह शिक्षा देने में; या वह*



जो उपदेशक है, वह उपदेश देने में; दान देने वाला उदारता से दे; नेतृत्व करने वाला परिश्रम से करे, दया करने वाला प्रसन्नतापूर्वक करे" (रोमियों 12:6-8)। प्रत्येक विश्वासी को अन्तर्वासी पवित्र आत्मा द्वारा विशिष्ट 'प्रेरक वरदान' (अनुग्रह) प्रदान किया जाता है, ताकि वह मसीह की देह का उपयोगी अंग हो। इन वरदानों को ग्रहण करना तथा इनका उपयोग विश्वास रूपी अनिवार्य तत्व पर निर्भर करता है जो प्रत्येक विश्वासीजन को दिए गये वरदान के अनुसार प्रभु परमेश्वर द्वारा प्रदान किया जाता है। बाहरी तौर पर आज की कलीसिया लौदीकिया की कलीसिया के समान दिखायी देती है : "अभागा, तुच्छ, दरिद्र, अन्धा और नंगा," और उसे अपनी इस अवस्था का ज्ञान भी नहीं है (प्रका0 3:17)। फिलादेलफिया की कलीसिया के समान कम लोग हैं, और उनकी "सामर्थ्य थोड़ी है" (प्रका0 3:8)। वास्तविकता यह है कि हम अपने जीवन में पवित्र आत्मा के सामर्थी कार्य को स्थान देने के बजाय अपने मन-मस्तिष्क (अपने ज्ञान-बुद्धि, भावावेश एवं अपनी मनमर्जी) की युक्तियों के अनुसार लोगों को प्रशिक्षण देते हैं। कड़वी सच्चाई यह है कि हमारा अविश्वास हमें सामर्थ्य-विहीन किए है।

"जिसको भविष्यद्वाणी का दान मिला है, वह विश्वास के परिमाण के अनुसार भविष्यद्वाणी करे"। यहाँ पौलुस इस बात पर जोर देना चाहता है कि विश्वासियों को अपने वरदान का उपयोग परमेश्वर द्वारा दिए गये विश्वास की मात्रा (परिमाण) के अनुसार ही करना चाहिए; अपने को वास्तविकता से अधिक नहीं समझना (अति मूल्यांकन नहीं करना) चाहिए। ऐसा लगता है कि इन पदों के

आधार पर सात प्रकार के "प्रेरक-वरदान" पाए जाते हैं :  
भविष्यद्वाणी, सेवा-सुश्रुषा, शिक्षा देना, उपदेश (प्रोत्साहन) देना,  
दान देना, नेतृत्व प्रदान करना (प्रशासन) और दया करना।

चूंकि परमेश्वर के वचन की प्रकाशना का लिखित रूप अब अपनी पूर्णता में उपलब्ध है, इसलिए आज के भविष्यवक्ता की (शिक्षा रूपी) सेवा अत्यन्त महत्वपूर्ण है, किन्तु उनकी यह सेवा **पुराना नियम** काल के भविष्यवक्ताओं से थोड़ी फर्क है। उस समय के नबियों की सेवा तभी उपयोगी होती थी जब वे विश्वास के परिमाण के अनुसार "आत्मा में होकर" बोलते थे। आज झूठे शिक्षकों से अपनी मण्डली की रक्षा हेतु प्रभु परमेश्वर जिन भविष्यवक्ताओं को इस्तेमाल करता है, उनके बारे में भी यह बात सच है (दू० पत० 2:1-3)। **पुराना नियम** काल में प्रभु परमेश्वर ने जिन्हें भविष्यवक्ता होने हेतु चुना, वे परमेश्वर-प्रदत्त योग्यतानुसार परमेश्वर का संदेश दिए। **पुराना नियम** में इसके अनेक उदाहरण पाए जाते हैं कि प्रभु परमेश्वर ने अपने नबियों द्वारा लोगों को अपना संदेश दिया। **पुराना नियम** में 'भविष्यवक्ता या भविष्यद्वाणी' शब्द लगभग नौ सौ तीस बार आया है। इसमें से सिर्फ तीस बार ये शब्द 'भविष्य बताने' के अर्थ में प्रयोग हुए हैं। शेष लगभग नौ सौ बार प्रभु परमेश्वर ने अपने नबियों के द्वारा इस्राएलियों को यह चेतावनी दिया कि उनके पाप के कारण उन पर ईश्वरीय प्रकोप आने वाला है।

इसी तरह परमेश्वर आज भी अपने नबियों को इस्तेमाल कर

रहा है। **नया नियम** काल में अपना पवित्र आत्मा भेजकर अपनी संतानों के लिए प्रभु परमेश्वर ने अपना वचन लिपिबद्ध कराया। हमारे लिए जो कुछ जानना ज़रूरी है, वह सब प्रभु परमेश्वर ने अपने पवित्र वचन (बाइबल) में लिखवा दिया है। आज हमें हमारा 'भविष्य' बताने के लिए भविष्यवक्ताओं की जरूरत नहीं है। अपने पवित्र शास्त्र में प्रभु परमेश्वर ने जो कुछ प्रकट कर दिया है उसके अतिरिक्त (हमारे जीवन के बारे में) अन्य कुछ (कोई नई बात) वह नहीं दर्शाएगा। बहरहाल, इसमें कोई संदेह नहीं कि **नया नियम** में वर्णित भविष्यवाणी के वरदान की आज की कलीसिया में बड़ी जरूरत है; क्योंकि यह वरदान झूठ-फरेब के प्रति संवेदनशील (जागरूक) होता है। परमेश्वर आज के भविष्यवक्ता को, झूठे शिक्षकों से कलीसिया की रक्षा हेतु इस्तेमाल करता है।

रोचक है कि भविष्यवाणी और शिक्षा के बीच में **सेवा-सत्कार** रूपी वरदान का जिक्र किया गया है। तीमुथियुस का जीवन सेवा-सत्कार रूपी वरदान का एक अच्छा उदाहरण था। इस वरदान से विभूषित लोग उन छोटी से छोटी भौतिक आवश्यकता को पहचान लेते हैं जिन्हें अन्य लोग नगण्य या अमहत्वपूर्ण समझते हैं। पौलुस ने तीमुथियुस की सेवा-सहायता के बारे में यह सुन्दर टिप्पणी की है : "मेरे पास उसके सदृश कोई अन्य" ऐसा व्यक्ति नहीं जो उसकी तरह लोगों की सेवा (देखभाल) कर सकता है। अच्छा सेवक (नौकर) इस बात से हर्षित होकर दूसरों की सेवा करता है कि वह अपनी सेवा द्वारा किसी अन्य को मानसिक शांति प्रदान कर रहा है। तीमुथियुस ने पौलुस की इस प्रकार सेवा की "जैसे पुत्र पिता की

सेवा करता है ताकि पौलुस भली-भाँति अपना सेवा-कार्य कर सके (प0 कुरि0 16:15; फिलि0 2:20, 22)। संतों अर्थात् प्रभु भक्तों की सेवा-सुश्रुषा करने वाला जन उन लोगों के लिए आवश्यक कार्य के महत्व को पहचानता है और आवश्यकतानुसार वैयक्तिक समय, शक्ति एवं सम्पदा को भी लगाकर ऐसे सेवा – कार्य को पूरा करता है।

दूसरों को वचन एवं प्रार्थना के लिये स्वतंत्र करने हेतु जरूरत के अनुसार उनकी सहायता करने की तत्परता, इच्छा एवं योग्यता को ही सेवा-सहायता रूपी वरदान कहते हैं। प्रेरितों को वचन की शिक्षा और प्रार्थना के लिए स्वतंत्र करने हेतु अन्ताकिया की मंडली ने लोगों की भौतिक आवश्यकता सम्बन्धी सेवकाई के लिए सेवकों (डीकन्स) का चयन किया (प्रेरि0 6:1-6)। ऐसी सेवा के वरदान को पाए लोग दूसरों की आवश्यकताओं को सरलता व स्पष्टता से समझते हैं और ईश्वर-प्रदत्त इच्छा एवं आनन्द के साथ कलीसिया में सेवा-सहायता करते हैं।

**शिक्षा** देने के वरदान को पाए हुए विश्वासी में परमेश्वर के वचन की गहरी सच्चाईयों को खोजते रहने की ईश्वर-प्रदत्त आकांक्षा (भूख या लगन) होती है, तथा इन सच्चाईयों को दूसरों को सिखाने की योग्यता पायी जाती है। बहुत से शिक्षक वचन के अध्ययन में गहरी रुचि रखते हैं, किन्तु दूसरों को शिक्षा देने से पीछे हटते (शर्माते या झिझकते) हैं और इस प्रकार इस सोच के शिकार हो जाते हैं कि उनमें शिक्षा देने का वरदान नहीं है। परन्तु परमेश्वर के वचन की खरी शिक्षा कलीसिया के संतुलित आत्मिक विकास के

लिए बहुत महत्वपूर्ण है। सही शिक्षा बगैर परमेश्वर तथा उसके द्वारा किए गये कार्य के बारे में मंडली की समझ असंतुलित एवं सतही होगी, गहरी नहीं। पवित्र आत्मा द्वारा दिए गये किसी भी वरदान का वचन-अध्ययन एवं आत्मा पर निर्भरता के माध्यम से विश्वासी के जीवन में विकसित होना आवश्यक है, और यह बात शिक्षा देने के वरदान के बारे में और भी जरूरी है।

**उपदेश** (अर्थात् प्रोत्साहन) देने का वरदान शिक्षा देने के वरदान से भिन्न है। प्रोत्साहन हमारी इच्छा को प्रभावित करता है, जबकि शिक्षा हमारे मन-मस्तिष्क पर केन्द्रित होती है। विश्वासियों के व्यवहारिक जीवन में आत्मिक विकास से प्रेरणा पाकर प्रोत्साहन देने वाले वैयक्तिक तौर पर मदद करने के लिए तत्पर होते हैं, ताकि विश्वासी जन आत्मिक विकास में आगे बढ़ता रहे। पौलुस का जीवन इसका एक उत्तम उदाहरण रहा। कुलुस्सियों 1:28 तथा गलातियों 4:19 के अनुसार उसने 'प्रत्येक व्यक्ति को मसीह में सिद्ध' करने के लिए निरन्तर परिश्रम किया। कहने का मतलब यह है कि प्रोत्साहन के वरदान से आशीषित लोग दूसरों में आत्मिक परिपक्वता पहचानने की क्षमता रखते हैं और विकासशील एवं सीखने के इच्छुक विश्वासियों को आनन्दपूर्वक प्रोत्साहित करते हैं। कुरिन्थुस के विश्वासियों की आत्मिक शैशवास्था पहचान कर पौलुस उनसे आत्मिक लोगों की तरह बातें नहीं कर सका, बल्कि "शारीरिक" लोगों की तरह बात किया (प0 कुरि0 3:1)। प्रोत्साहन देने वाले, दूसरे विश्वासियों में आत्मिक उपलब्धियों (उन्नति) की सम्भावनाओं को पहचानने की क्षमता रखते हैं, और इस दिशा में लोगों को

व्यवहारिक परामर्श-सहायता प्रदान करने में हर्षित होते हैं।

दान देने का एक सामान्य अर्थ है : 'अपनी वस्तुओं को दूसरों को देना या दूसरों में बांटना' और पवित्र शास्त्र बाइबल के अनुसार यह कार्य बेहिचक होना चाहिए, क्योंकि "परमेश्वर हर्ष से देने वाले से प्रेम रखता है" (दू0 कुरि0 9:7)। मत्ती के सुसमाचार में इस वरदान के अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। इस वरदान से सम्पन्न लोग समझदारी के साथ पूंजी निवेश करते हैं ताकि अपने समय, सम्पत्ति एवं पैसे को प्रभु की सेवकाई में लगा सकें। देने वालों में निरन्तर इस सच्चाई की सुनिश्चयता होनी चाहिए कि उनके निर्णय प्रभु परमेश्वर की इच्छा की अधीनता में हैं - चाहे थोड़ा देना हो या अधिक। इस संदर्भ में **मैसीडोनिया** के लोगों का उदाहरण स्मरणीय है : "उन्होंने परमेश्वर की इच्छा के अनुसार अपने आपको पहले प्रभु को दिया, फिर हमें भी दिया" (दू0 कुरि0 8:5)। देने वाले व्यक्ति में आवश्यकता अथवा चीजों के मूल्यांकन की योग्यता पाई जाती है, जिसकी प्रेरणा से वह उत्तम दान देना चाहता है। मत्ती ने अपनी पुस्तक में **मागी** जाति के ज्ञानियों द्वारा मसीह को देने के लिए लाये गये उपहारों (भेंट) का उल्लेख किया है। इसके अलावा, मरियम द्वारा लाए गये सुगन्धित द्रव्य को "बहुमूल्य" तथा युसुफ के लिए तैयार की गई कब्र, जिसमें मसीह को गाड़ा गया था, "नई" बताया गया है (मत्ती 2:11; 26:6-11, 27:57-60)।

जो आवश्यकताएं अन्य लोग नहीं पहचानते उन आवश्यकताओं को दान देने के वरदान से युक्त लोग पहचान लेते हैं। जैसे दान देने वाले अपने दान के बारे में प्रभु की अगुवाई की

ओर दृष्टि लगाए रहते हैं, उसी प्रकार पाने वालों से भी अपनी आवश्यकता-पूर्ति के लिए प्रभु की ओर दृष्टि लगाए रहने की उम्मीद रखते हैं। सच्चे दानकर्ता चुपचाप एवं गुमनाम तौर पर दान देना पसन्द करते हैं। रोचक है कि चारों सुसमाचारों में सिर्फ मत्ती ने ही बगैर दिखावे के (चुपचाप) दान देने की बात पर जोर दिया है (मत्ती 6:1-4)। ऐसा दान देने वाले पैसे के लोभ के विनाशकारी प्रभाव को भी पहचानते हैं, और यह भी जानते हैं कि उनके दान को पाने वालों में से अधिकतर लोग इस विनाशकारी असर को अभी नहीं समझे हैं। अतएव ऐसे दानशील व्यक्ति अपने दान को इस प्रकार देना चाहते हैं जिससे दान को पाने वालों में पर-निर्भरता, काहिलपन (आलस्य) और फिजूलखर्ची को बढ़ावा न मिले। दान देने के वरदान से आशीषित लोग प्रायः किफायती, मेहनती, समझदार तथा 'सादा जीवन एवं उच्च विचार' वाले व्यक्ति होते हैं। ऐसे लोग अपने दैनिक जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति से संतुष्ट होते हैं, दिखावे या शान-शौकत के पीछे नहीं भागते।

**नेतृत्व** रूपी सहायता प्रदान करने वाले व्यक्ति को यत्नपूर्वक ऐसा करना है। इस वरदान का उद्देश्य (स्थानीय) कलीसिया में सुव्यवस्था, सुप्रबन्ध एवं अनुशासन (शांति) कायम रखना है। कुछ लोगों को प्रभु परमेश्वर की ओर से कलीसिया की देखरेख, प्रबन्ध एवं संचालन के लिए विशिष्ट वरदान प्रदान किया गया है। ऐसे लोग मंडली के खिदमतगार या सेवक हैं, मंडली के 'मालिक' (या बॉस) नहीं। वचन की चेतावनी है कि ऐसे लोगों को अपना वरदान बड़ी सावधानी, विनम्रता और प्रेम के साथ इस्तेमाल करना है। ऐसे

प्रशासक या प्रबन्धक का एक सुन्दर उदाहरण नहेमायाह की जीवन कहानी में पाया जाता है। प्रबन्ध या नेतृत्व के वरदान से आशीषित व्यक्ति किसी कार्य (प्रोजेक्ट) के संचालन व समापन का आंकलन करने में सक्षम होता है। जब नहेमायाह को परमेश्वर की प्रजा के "महाक्लेश और निन्दा" को दूर करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी सौंपी गई तो वह यरूशलेम की शहरपनाह के पुनर्निर्माण के महत्व को फौरन समझ गया (नहे0 1:2-3)। प्रशासक जहाँ और जब सम्भव होता है दूसरों को दायित्व सौंपते हैं, किन्तु यह भी जानते-समझते हैं कि कब और कौन सी जिम्मेदारी दूसरों को नहीं सौंपना चाहिए। उदाहरणस्वरूप, नहेमायाह ने शहरपनाह के निर्माण की जिम्मेदारी औरों को सौंपी, किन्तु विरोधियों से निपटने का दायित्व स्वयं संभाला (नहे0 4:13)। प्रभु भक्त प्रशासक अपने कार्य-दायित्व को बखूबी पूरा करते हैं, और अपने नेतृत्व का घोर विरोध भी सहने से पीछे नहीं हटते। नहेमायाह ने अपने सहकर्मियों एवं बाह्य दुश्मनों, दोनों का विरोध सहा (नहे0 4:8-18)।

इसके अतिरिक्त प्रशासकों अर्थात् नेतृत्व प्रदान करने वालों में असम्भव या भारी प्रतीत होने वाले कार्यों को छोटे-छोटे भागों में विभाजित करके सम्पन्न करने की योग्यता पाई जाती है। जैसे कि नहेमायाह ने यरूशलेम की शहरपनाह के पुनर्निर्माण रूपी बड़े कार्य को छोटे-छोटे खंडों में विभाजित करके विभिन्न समूहों द्वारा सम्पन्न कराया (नहे0 3:1-32)। इतना ही नहीं, नेतृत्व या प्रबन्ध प्रदान करने का वरदान पाए लोग किसी कार्य की सामान्य सम्पन्नता के साथ उसके उन सूक्ष्म या छोटी-छोटी बातों पर भी ध्यान देते हैं



जिन्हें अन्य लोग नजरन्दाज कर जाते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं ताकि उन्हें सौंपा गया कार्य विधिवत एवं ठीक से पूरा किया जाए। अपने कार्योद्देश्य को समय पर और सही ढंग से पूरा करने हेतु वे स्वयं को बाहरी ध्यानाकर्षण (विध्न-बाधा) से दूर रखते हैं। उदाहरण के लिए, नहेमायाह ने शहरपनाह बनाने के काम में रोज-रोज स्वयं ईंट-पत्थर शायद नहीं ढोया, लेकिन इस कार्य की विध्न-बाधाओं को दूर करने में उसने कोई कसर नहीं रख छोड़ी - जैसे कि आवश्यक धनराशि का इन्तजाम करना, जिसके अभाव में काम रुक सकता था (नहे0 5:1-13)। ऐसे अगुवे दूसरों को कार्य बांटने या यूं कहें कि दूसरों को कार्य में हाथ बंटाने की प्रेरणा देने में खुश होते हैं और सब कुछ एकतापूर्ण तरीके से सम्पन्न होने में आवश्यक संसाधन एवं सहायता-सहयोग प्रदान करते हैं।

**दया करने** का वरदान अक्सर उन्हीं के जीवन में अपनी पूर्ण सुन्दरता के साथ खिलता है जिन्होंने प्रभु परमेश्वर की असीम दया का सच्चा स्वाद चखा है। दया करने के वरदान का उदाहरण यूहन्ना नामक चले के जीवन में भी दिखायी देता है। इस वरदान से सम्पन्न विश्वासी दूसरों के दुःख-दर्द को जल्दी पहचानता है और उनके दुःख-दर्द में तत्परता से शामिल होता है। यूहन्ना ने अपनी पहली पत्री को इसी उद्देश्य से लिखा - दुःख, कष्ट एवं यातना के भय व चिंता से परे ईश्वरीय आनन्द, संगति एवं आशा-भरोसा की ओर दृष्टि लगाने के लिए प्रेरणा दिया (प0 यूह0 1:3-4; 3:2-3; 4:18; 5:13-14)। दयालुता के वरदान से आशीषित जन, दूसरों को ठोकर नहीं पहुंचाने या उन्हें नाराज नहीं करने के प्रति संवेदनशील होने के

कारण, सख्त रुख अपनाने में असहज महसूस करता है। मानसिक व भावनात्मक तकलीफ सहने वाले अनेक लोग ऐसे व्यक्ति के पास आकर अपना दुःख-दर्द बांटने में सहज व राहत महसूस करते हैं (क्योंकि ऐसा दयालु जन उनकी बातों की झंझर-उधर गपशप या चुगली नहीं करता)। रोचक है कि क्रूस पर अपनी मृत्यु के समय मसीह यीशु ने अपनी दुखित माता का दायित्व यूहन्ना को सौंपा (यूह0 19:26, 27)। यह भी रोचक है कि प्रोत्साहन का वरदान पाए लोग दुखित व्यक्ति को उसके दुःख-दर्द में (ईश्वरीय) भलाई पहचानने में मदद करते हैं, जबकि दया करने के वरदान से आशीषित जन दुखित व्यक्ति के दुःख-दर्द का कारण दूर करना चाहेगा। अन्ततः हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ये सब वरदान पवित्र आत्मा द्वारा दिए जाते हैं, और उसी पर आश्रित जीवन व्यतीत करने के द्वारा ही परमेश्वर की इच्छानुसार हम अपने जीवन में वरदान विशेष के कार्यकारी होने की सामर्थ्य पाते हैं।

## बारह

रोमियों के बारहवें अध्याय के अंतिम खंड अर्थात् नौवें से इक्कीसवें तक के पदों में पौलुस ने अन्य विश्वासियों के साथ हमारे जीवन-व्यवहार के बारे में कुछ निर्देश दिए हैं। यदि हम पाप की अधिकार-सत्ता के अधीन अभी भी अविश्वासी होते तो इन आज्ञाओं का पालन करना असम्भव होता। बहरहाल अब हम यह जानते हैं कि हम पाप एवं इसकी अधिकार-सत्ता के प्रति मर चुके हैं और यीशु के पुनरुत्थान में उसके साथ नये जीवन के लिए जी उठे हैं। अब परमेश्वर की आज्ञाओं के पालन की इच्छा एवं इसके लिए आवश्यक सामर्थ्य के वास्ते हम पवित्र आत्मा पर आश्रित जीवन व्यतीत करते हैं जो हमारे जीवन में मसीह का जीवन पुनरुत्पादित कर रहा है।

“प्रेम निष्कपट हो” (रोमियों 12:9अ)। पवित्रशास्त्र हमें सबसे प्रेम करना सिखाता है, अर्थात् उसी प्रेम में होकर जैसे कि प्रभु परमेश्वर हमसे प्रेम करता है (प0 यूह0 3:11; यूह0 13:34)। दूसरों से प्रेम करने की ऐक्टिंग करना आसान है, अर्थात् उनके साथ ऐसे कार्य-व्यवहार का दिखावा करना जिससे उन्हें ऐसा लगे जैसे कि हम वास्तव में उनसे प्रेम करते हैं। लेकिन यह बाइबेलीय प्रेम नहीं है। बाइबेल इसे पाखंड की संज्ञा देती है। परमेश्वर ने इस प्रकार हमसे प्रेम नहीं किया। परमेश्वर ने हमसे तब भी प्रेम किया जबकि हम उससे प्रेम नहीं करते थे। उसने हमें बचाने के लिए “अपना एकलौता पुत्र” दे दिया जबकि हमारे पास उसके बदले उसे देने के लिए कुछ नहीं था। जब हम पवित्र आत्मा की अधीनता एवं प्रभाव में जीवन व्यतीत करते हैं तब हमारे आचरण से इस प्रकार का

(निःस्वार्थ या निष्कपट) प्रेम प्रकट होता है। विश्वासियों के सभी आपसी सम्बन्धों की बुनियाद प्रेम है, अर्थात् बाइबेलीय प्रेम (प0 कुरि0 13:4-7)। सच्चा बाइबेलीय प्रेम स्वार्थ-विहीन होता है। ऐसा प्रेम, दूसरों को अपने से ज्यादा आदर-मान देता है, यानी उनकी बेहतरी व भलाई का ज्यादा ख्याल रखता है (फिलि0 2:3-4)। मंडली में उपयोग किए जाने वाले सभी वरदान प्रेम बगैर बेफायदा हैं (प0 कुरि0 13:1-3)। सच्चा बाइबेलीय प्रेम निष्कपट होता है। उसमें छल, कपट, पाखंड या दिखावटीपन नहीं पाया जाता। यह प्रेम मसीह (का प्रेम या मसीह) द्वारा बताया गया प्रेम है (यूह0 13:34-35)। बहुत से लोग प्रेम का बहाना या छलपूर्ण दिखावा करने में तेज होते हैं - अर्थात् बोलचाल में विनम्र, दूसरों को ठोकर पहुंचाने, नाराज करने या दुःखित करने से दूर रहना और दूसरों में अभिरुचि रखना, दूसरों की आवश्यकताओं एवं निराशाओं के प्रति हमदर्दी दिखाना, इत्यादि। परन्तु मसीह का प्रेम विनम्रता, सज्जनता और परिष्कृतता से परे जाने वाला प्रेम है, जो कि दूसरों के लिए स्वयं (के समय, सम्पत्ति तथा अपने आप) को न्योछावर करने को तत्पर रहता है।

“बुराई से घृणा करो” (रोमियों 12:9ब)। ऐसा करना तब तक असम्भव है जब तक कि हम रोमियों के बारहवें अध्याय के पहले पद के अनुसार “अपने को परमेश्वर को सौंप” देने की सच्चाई को नहीं अपनाते। एक अच्छा मसीह होने के लिए बुराई से अच्छी तरह घृणा करने वाला भी होना आवश्यक है (भज0 97:10)।

“भलाई में लगे रहो” (रोमियों 12:9स)। अर्थात् भली, अच्छी एवं उत्तम बातों को जानना-पहचानना और उन्हें थामे रहना, उनमें

स्थिर रहना (फिलि0 4:8)। पवित्र वचन के इस पूरे पद को कुछ इस प्रकार अनूदित किया जा सकता है : 'तुम्हारा प्रेम कपटरहित होना चाहिए। बुराई से नफरत रखो, भलाई को पकड़े रहो'। बुराई करने वालों के प्रति ईश्वरीय प्रेमवश दया रखते हुए, बुरे कामों से घृणा करने के द्वारा इस पद के शिक्षा-सिद्धान्त को व्यवहार में लाया जा सकता है (आमोस 5:15अ)।

*"भाईचारे के प्रेम से एक दूसरे पर दया करो। परस्पर आदर करने में एक दूसरे से बढ़ चलो"* (रोमियों 12:10)। इस पद का एक अनुवाद इस प्रकार है : "सच्चे भाइयों की तरह एक दूसरे को सारे हृदय से प्यार करें" (बुल्के)। भाईचारे के प्रेम से एक दूसरे पर दया करने वालों की संख्या कितनी कम है, यह हम स्वयं अंदाज लगा सकते हैं। इफिसियों 4:32 में पौलुस यह लिखता है, "एक दूसरे के प्रति दयालु और करुणामय बनो, और परमेश्वर ने मसीह में जैसे तुम्हारे अपराध क्षमा किए, वैसे ही तुम भी एक दूसरे के अपराध क्षमा करो।" केवल प्रभु परमेश्वर के अनुग्रह से विश्वास के द्वारा ही "परस्पर आदर करने में" हम एक दूसरे से आगे हो सकते हैं। कहने का मतलब यह है कि जब अन्य विश्वासी को आदर-मान मिलता है तो हमें प्रसन्न होना चाहिए यानि हार्दिक तौर पर दूसरे विश्वासी को अपने से ज्यादा 'आदर-अवसर' देने की चाहत रखना। (फिलि0 2:3-4)।

*"प्रयत्न करने में आलसी न हो, आत्मिक उत्साह से परिपूर्ण रहो, और प्रभु की सेवा करते रहो"* (रोमियों 12:11)। यहाँ सांसारिक बिजनेस-व्यापार की बात नहीं की गई है। यहाँ खास बात आत्मिक आलसीपन की है। प्रायः परमेश्वर के अनुग्रह की बात का गलत अर्थ

लगाकर शारीरिक मसीही लोग आत्मिक आलसीपन, ढिलाई और कार्य-विमुखता रूपी लापरवाही में पड़ जाते हैं (प्रका० ३:१५)। लेकिन ध्यान दें कि आगे क्या लिखा है – “आत्मिक उत्साह से परिपूर्ण रहो”। यहाँ “उत्साह” शब्द में उष्ण, गर्म, सरगर्म या जलते हुए का भाव पाया जाता है। सरगर्म होना (प्रका० ३:१९ब), टंडेपन या असंवेगात्मक का विलोम है। अतः उपर्युक्त पद के इस वाक्य को इस प्रकार भी अनूदित किया जा सकता है : “(दीपक की तरह) जलते रहो, **आत्मा** में प्रज्वलित या जलते रहो, प्रभु की सेवा करते रहो”।

“आशा में आनन्दित रहो, क्लेश में स्थिर रहो, प्रार्थना में लवलीन रहो” (रोमियों १२:१२)। हमारी **आशा** अर्थात् विश्वसनीय एवं सुनिश्चित प्रत्याशा “हमारे प्राण के लिए लंगर” समान है (इब्रा० ६:१९), और इसका “यीशु की ओर दृष्टि लगाए रहने” से गहन सम्बन्ध है। अन्य किसी ओर नहीं बल्कि सदैव केवल “यीशु की ओर दृष्टि लगाए रहने” पर ही हमारा प्राण (मन, इच्छा, भावना) अपने लंगर से सम्बद्ध रहता है, और धैर्यपूर्वक आनन्द के साथ विश्वास में स्थिर रहने और आशा में बने रहने की सामर्थ्य पाता है (कुलु० १:११)। “क्लेश” या परीक्षा में सहनशीलता के द्वारा हम दृढ़ता, सिद्धता या स्थिरता में ढाले जाते हैं। अतः याकूब “विभिन्न परीक्षाओं” को “आनन्द की बात” कहता है, क्योंकि हमारे विश्वास की परख हममें धैर्य, सहनशीलता और अनन्तः परिपक्वता विकसित करती है (याकूब १:२-१४; रोमियों ५:३-४)।

इस पद में यह भी कहा गया है कि "प्रार्थना में लवलीन रहो"। यदि कोई बाइबल स्टडी की मीटिंग है तो शायद दस लोग उपस्थित हों, संडे सर्विस में शायद सैकड़ों आएँ, लेकिन "प्रार्थना" में लवलीन रहने के लिए शायद दो-तीन जन आएँ। पवित्रशास्त्र हमें प्रार्थना के विषय में इन शब्दों में प्रोत्साहित करता है : "निरन्तर प्रार्थना में लगे रहो", "प्रार्थना में लगे रहो", "हर समय प्रार्थना करते रहो", "प्रार्थना में लगे रहें", "सदैव प्रार्थना करना चाहिए", "सांझ, भोर व दोपहर को प्रार्थना" करना (प0 थिस्स0 5:17; कुलु0 4:2; इफि0 6:18; रोमियों 12:12; प्रेरि0 6:4; लूका 18:1; भज0 55:16-17)। इस प्रकार प्रार्थना में लगे रहना कैसे सम्भव है? क्या हमें खाना और सोना छोड़कर किसी पहाड़ी पर एकान्तवास करना होगा? प्रार्थना क्या है? इसकी क्या परिभाषा है? *"प्रार्थना एक विशिष्ट साधन या माध्यम है जिसके द्वारा हम निरन्तर पिता परमेश्वर की उपस्थिति के प्रति व्यवहारिक तौर पर जागरूक रहते हैं। यह स्वर्गिक पिता के समक्ष हमारी दुर्बलता की सही अभिव्यक्ति है। इसके साथ ही साथ प्रार्थना दिन-प्रतिदिन हमारे प्रति परमेश्वर के प्रेम एवं देख-रेख पर हमारे सतत् भरोसे की भी अभिव्यक्ति है। प्रार्थना, प्रभु परमेश्वर पर हमारी निरन्तर निर्भरता (रूपी आवश्यकता) को स्वीकार करना है"* (जॉन डर्बी)। सच्ची प्रार्थना कोई क्रिया-कलाप नहीं है, बल्कि प्रभु परमेश्वर पर निरन्तर भरोसा रखने वाली जीवन-शैली है। पहला थिस्सलुनीकियों का मायने-मतलब हमारे जीवन में तभी साकार होगा जबकि हमारा मन-मस्तिष्क प्रभु के द्वारा एवं प्रभु से भरपूर व संतुष्ट हो। प्रार्थना कोई कसरत नहीं, बल्कि प्रभु में लवलीन जीवन है।

“पवित्र लोगों की जो आवश्यकता हो उसमें उनकी सहायता करो। पहुँचाई करने में लगे रहो” (रोमियों 12:13)। किसी दूसरे विश्वासी की आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकता समझकर सहायता करना महत्वपूर्ण है (गला0 6:2)। जब आरम्भिक कलीसिया पर पवित्र आत्मा ने अधिकार ग्रहण किया तो “उनमें से कोई भी अपनी सम्पत्ति को अपनी नहीं कहता था, परन्तु उनका सब कुछ साझे का था”। नतीजतन, “उनमें कोई भी दरिद्र नहीं था” (प्रेरि0 4:34-35)। पवित्रशास्त्र के इन पदों से दान देने के बारे में कुछेक बुनियादी सिद्धान्त स्पष्ट हैं : सब कुछ प्रभु के लिए है, हम तो सिर्फ भंडारी (प्रबन्धक) समान हैं और सदैव उसके निर्देश व अगुवाई के अनुसार सब कुछ उसी की सेवा में इस्तेमाल होना है। रोचक है कि अपनी पत्रियों में कलीसियाई प्रबन्ध सम्बन्धी दिशा-निर्देश देने वाले पौलुस प्रेरित ने संसारिक संसाधनों में धनी लोगों के लिए यह आदेश नहीं देता कि वे ‘अपना सब कुछ बँच’ दें। पहला तीमुथियुस 6:17-18 में प्राप्त संदेश इस खतरनाक शिक्षा का खंडन है कि ‘अभावग्रस्त लोगों को देने’ के बहाने सम्पन्न लोगों की धन-सम्पत्ति छीनी-लूटी जा सकती है। पवित्र बाइबल लोगों के निजी सम्पत्ति रूपी अधिकार का समर्थन करती है। यह तो दान देने के सिद्धान्त का मौलिक आधार है।

इसके बाद “पहुँचाई करने में लगे रहने” की बात कही गई है। यहाँ ‘पहुँचाई’ के लिए मूल भाषा (यूनानी) में जो शब्द प्रयोग हुआ है उसका अर्थ है, “अपरिचितों के प्रति प्रेमभाव”। “लगे रहने” के लिए मूल भाषा के शब्दार्थ में ‘पीछे पड़ने, खोजने, अनुसरण



करने या ढूँढने' की बात शामिल है। अतः "पहुनाई" करने का मतलब सिर्फ आगन्तुकों की आवभगत करना ही नहीं है, बल्कि अजनबी, अपरिचित या जरूरतमंद (विश्वासियों) के लिए अपना घर उपलब्ध रखना है (इब्रा0 6:10; 13:2)। इस संदर्भ में यह मानी हुयी बात है कि रोमियों 6:6 के अनुसार – क्रूस पर 'पुराने मनुष्यत्व' के क्रूसित होने की आत्मिक सच्चाई को अपनाने तथा रोमियों के बारहवें अध्याय के प्रारम्भिक शब्दों के अनुसार अपने शरीरों को परमेश्वर के लिए भेंट स्वरूप सौंपने की दिशा में अग्रसर विश्वासी ही ऐसी 'पहुनाई' के लिए अपने दिल व घर का द्वार खुला रखने की ओर बढ़ते हैं। हाँ, ऐसे विश्वासी अन्तर्वासी पवित्र आत्मा द्वारा परमेश्वर की प्रकट इच्छा में आगे बढ़ने की योग्यता पाते हैं। व्यवस्था के अधीन ऐसा सम्भव नहीं था।

*"अपने सताने वालों को आशिष दो, पर शाप न दो"* (रोमियों 12:14)। लूका के सुसमाचार के छठवें अध्याय के सत्ताईसवें और अट्ठाईसवें पदों में प्रभु यीशु द्वारा दी गई शिक्षा के प्रकाश में रोमियों के इस पद का अर्थ समझना कठिन नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि प्रभु यीशु का जीवन-उदाहरण भी इसका स्पष्टीकरण है। बेशक, यदि हमारे जीवन में पवित्र आत्मा का वास नहीं हो तो अपने सताने वालों के प्रति प्रेमपूर्ण व्यवहार करना सम्भव नहीं होगा। परन्तु सच्चाई यह है कि मसीह के विश्वासियों में पवित्र आत्मा वास करता है और जैसे जैसे मसीह के साथ सह-क्रूसित होने की सच्चाई को हम समझते व अपनाते जाते हैं और जैसे जैसे पवित्र आत्मा पर निर्भरता का जीवन जीने में आगे बढ़ते हैं, वैसे वैसे परमेश्वर-प्रदत्त

क्षमता द्वारा अपने सताने वालों से प्रेम करना सीखते हैं। प्रभु यीशु के दुश्मनों ने जब उसका ठट्ठा उड़ाया, मारा-पीटा और उसे क्रूस पर चढ़ा दिया, तब मरते वक्त भी उसने पिता परमेश्वर से उन्हें क्षमा करने की विनती की (प0 पत0 2:21-23)।

*“आनन्द करने वालों के साथ आनन्द करो, और रोने वालों के साथ रोओ”* (रोमियों 12:15)। यह पद हमें अपने आप से परे जाने अर्थात् “आनन्द करने वालों के साथ आनन्दित होने तथा रोने वालों के साथ रोने” के लिए प्रोत्साहित करता है। वह इंसान कितना मुबारक है जो लाज़र की कब्र पर ‘रोने’ वाले मसीह की तरह दूसरों के दुःख-दर्द को सचमुच महसूस करते हुए पूरी सहानुभूतिपूर्वक उनके दुःख में शामिल होता है। लाज़र को मृतकों में से पुनः जीवित करते समय प्रभु यीशु “रोया”, क्योंकि दुःखित लोगों की हृदय-वेदना को देखकर उसे बहुत तरस (सहानुभूतिपूर्ण दया) आया। मसीह ने अपने लिए जीवन व्यतीत नहीं किया, उसने सबके लिए जीवन बिताया और उनके दुःख-दर्द में हार्दिक सहानुभूतिपूर्वक अपनी संगति (सहायता) प्रदान किया। कुछ विश्वासी सहानुभूति के क्षेत्र में बहुत पीछे होते हैं। जब अन्य लोगों को सफलता या सम्पन्नता की ओर बढ़ते देखते हैं तो हम कैसा महसूस करते हैं? यदि पवित्र आत्मा के नियंत्रण में होंगे तो उनकी सफलता एवं उन्नति रूपी आनन्द में हम भी आनन्दित होंगे, ईर्ष्यालु नहीं। लेकिन यदि हम शारीरिकता के चलाए जीवन बिता रहे हैं तो दूसरों की उन्नति को देखकर ईर्ष्यालु होंगे। जो लोग पवित्र आत्मा पर आश्रित एवं उसके द्वारा नियंत्रित जीवन बिताने की ओर उन्मुख हैं, वे दूसरों के आनन्द में आनन्दित तथा दूसरों के शोक में शोकित होंगे।

“परस्पर एक-सा मन रखो। अभिमानी न हो, परन्तु दीनों से मिल-जुलकर रहो। अपनी दृष्टि में बुद्धिमान न बनो” (रोमियों 12:16)। “परस्पर एक-सा मन रखो”, अर्थात् अपने भले-चंगे या सुख-साधन (इत्यादि) का जो मापदंड रखते हो, वही दूसरों के लिए भी रखो। जैसे अपने भौतिक एवं आध्यात्मिक भलाई की चिंता रखते हो वैसे ही दूसरों के लिए भी रखो (फिलि0 2:4)। इसके साथ ही साथ पौलुस कहता है : “अभिमानी न हो, परन्तु दीनों से मिलजुल कर रहो”। अपने को ऊँचा मानना, अभिमान करना अर्थात् अहंकार करने की निरन्तर प्रलोभन-परीक्षा रहती है – ऊंचे लोगों, बड़े नाम या पद वालों से ही सम्बन्ध रखकर अपने को बड़ा बनाना, घमंड करना या कुछ विशिष्ट दर्शाना (याकूब 2:1-9)। ऐसा प्रतीत होता है कि पवित्र आत्मा से परिपूर्ण प्रभु के सभी सच्चे विश्वासी धरती के दीन (साधारण) लोगों से जुड़े रहे हैं। परमेश्वर की मंडली सिर्फ धनाढ्य एवं उच्च वर्ग के लोगों से नहीं बनी है। “न तो बहुत बुद्धिमान, न बहुत शक्तिमान और न बहुत कुलीन बुलाए गये” (प0 कुरि0 1:26)। स्मरण रहे कि मसीह का सुसमाचार ही हमें वास्तव में एक समान या एक बराबर करता है। धनाढ्यों को सुसमाचार सुनने के लिए दीनों की जगह आना जरूरी है। सिर्फ धनवानों के मध्य सक्रिय धर्म-सम्प्रदाय से सावधान रहें।

उपर्युक्त सोलहवें पद में पौलुस यह भी लिखता है : “अपनी दृष्टि में बुद्धिमान न बनो”। “अपनी दृष्टि में बुद्धिमान” होने सम्बन्धी यह बात नीतिवचन में पांच बार तथा यहाँ रोमियों में दो बार आई है। कुल मिला कर सात बार (नीति0 3:7; 26:5, 12, 16; 28:11

तथा रोमियों 11:25; 12:16)। सुलेमान के अनुसार जो मनुष्य स्वयं को अपनी दृष्टि में बुद्धिमान समझता है; "उससे बढ़कर आशा तो मूर्ख ही से" की जा सकती है। ऐसे अभिमानी लोग उनमें नहीं गिने जा सकते जो "रोने वालों के साथ रोते" हैं।

"बुराई के बदले किसी से बुराई न करो। उन बातों का आदर करो जो सब की दृष्टि में भली हैं। जहाँ तक तुम से बन पड़े सब के साथ यथासम्भव शान्तिपूर्वक रहो। प्रियों, अपना बदला कभी न लेना, परन्तु परमेश्वर के कोप को जगह दो, क्योंकि लिखा है, 'प्रभु कहता है कि बदला लेना मेरा काम है, बदला मैं दूंगा'। परन्तु 'यदि तेरा शत्रु भूखा हो तो उसे खाना खिला और यदि प्यासा हो तो पानी पिला; क्योंकि ऐसा करने से तू उसके सिर पर आग के अंगारों का ढेर लगाएगा'। बुराई से न हारो, परन्तु भलाई से बुराई को जीत लो" (रोमियों 12:17-21)। हमें दुःख देने वालों को दंड देना हमारी जिम्मेदारी नहीं है। स्मरण रहे, हम परमेश्वर की संतान हैं, और उसके लोगों के विरुद्ध कार्यरत लोगों को वही दण्डित करेगा। इस संदर्भ में कैन और हाबिल की कहानी नहीं भूलना चाहिए। कैन ने जब अपने भाई की हत्या कर दी, तो प्रभु परमेश्वर ने ही उसे दंडित किया। किसी और को उसे दंडित करने की अनुमति नहीं दी। हमें ऐसी परिस्थिति में परमेश्वर पर आशा-भरोसा रखना है जो सबका सच्चा न्यायी है। हमारे साथ अन्याय एवं अत्याचार करने वालों से वही निपटेगा। हमें यह काम अपने हाथ में लेने से दूर रहना है। अतः "बुराई के बदले किसी के प्रति बुराई नहीं" करना है। संसार, शरीर और शैतान तीनों प्रभु के विश्वासियों

के विरोधी हैं, और 'ईश्वरीय अनुमति की सीमा तक' विश्वासियों का बुरा करेंगे। यदि आपके प्रति बुराई की गई है तो बुरा करने वाले के प्रति मन में बुराई मत बैठाए रहिए। हाँ, ऐसे समय विश्वासी के मन में ईर्ष्या, द्वेष, नफरत और बदले की भावना घर बनाने लगती है; लेकिन परमेश्वर के अनुग्रह से हमें 'बदला लेने' से दूर रहना है (कुलु0 3:13)

“जहाँ तक तुम्हारा सम्बन्ध है, सबके साथ यथासंभव शान्तिपूर्वक रहो”। हाँ, मसीही जन के लिए यह हरदम संभव नहीं है कि सब मनुष्यों के साथ शान्तिपूर्वक रहे, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि वह शांति का प्रेमी, शांति को जीवन-व्यवहार में लाने वाला और अक्सर लोगों में शांति (मेल-मिलाप) कराने वाला हो सकता है (याकूब 3:18)।

“अपना बदला कभी न लेना, परन्तु परमेश्वर के प्रकोप को जगह दो; क्योंकि लिखा है, 'प्रभु कहता है कि बदला लेना मेरा काम है, बदला मैं दूंगा'”। जिन बातों को ठीक करने का अधिकार सिर्फ प्रभु परमेश्वर को है, उन्हें ठीक करने का अधिकार अपने हाथ में लेने का प्रयास विश्वासियों के लिए एक प्रलोभन-परीक्षा है। लेकिन जो अधिकार परमेश्वर का है उसे चुराने की कोशिश नहीं करनी चाहिए – बदला लेना यानि बुरे कार्य का न्यायपूर्ण रूप से बदला देना सिर्फ परमेश्वर का अधिकार है (इब्रा0 10:30; व्य0 32:35)। ईश्वरीय न्याय-दण्ड का तकाज़ा है कि अथाह परिस्थितियों का ज्ञान हो, अथाह नियत-भावना का ज्ञान हो तथा दूसरों पर इस सब के असर का ज्ञान हो; और ऐसा असीम व गहरा ज्ञान सिर्फ सर्वशक्तिमान,

धर्मी जज अर्थात् परमेश्वर में है (प0 थिस्स0 4:6; दू0 थिस्स0 1:6; इब्रा0 10:30; नीति0 20:22; प0 पत0 2:23)।

“यदि तेरा शत्रु भूखा हो तो उसे खाना खिला, और यदि प्यासा हो तो पानी पिला, क्योंकि ऐसा करने से उसके सिर पर आग के अंगारों का ढेर लगाएगा।” शत्रुओं और विरोधियों के प्रति सक्रिय प्रेम दर्शाने का कितना विशिष्ट निर्देश। प्रभु यीशु ने कहा, “अपने शत्रुओं से प्रेम करो, और जो तुम्हें सताते हैं, उनके लिए प्रार्थना करो” (मत्ती 5:44)। पौलुस कहता है कि शत्रुओं के प्रति दयापूर्ण आचरण करके हम उनके “सिर पर अंगारों का ढेर” लगाते हैं। कितना रोचक वायदा। लेकिन हमें याद रखना है कि हमें “अपना बदला कभी नहीं लेना है”। इसके बजाय परमेश्वर के भावी प्रतिकार को मौका देना है। जब तक परमेश्वर का समय नहीं आता हमें (बदला लेने से दूर रहते हुए) अपने शत्रुओं से प्रेम रखना है तथा उनके लिए परमेश्वर से इस आशा में प्रार्थना करना है कि वे पश्चाताप करें (नीति0 25:21-22)।

“बुराई से न हारो, परन्तु भलाई से बुराई को जीत लो”। प्रभु के सन्तों के समक्ष कितना सकारात्मक संदेश – “भलाई”। परमेश्वर का अनुग्रह हमारे समक्ष यही परोसता है; न कि सिर्फ नकारात्मक बातें। सिर्फ चोरी करना छोड़ने की बात नहीं, बल्कि (भले कार्यों के द्वारा) दूसरों को दान देकर मदद करना (इफि0 4:28)। रोमियों के बारहवें अध्याय के नौवें पद में पौलुस ने जिस बात को शुरू किया था उसी से यहाँ समापन करता है – अर्थात् बुराई से घृणा करने का मतलब उसे भलाई से जीतना है।

## तेरह

रोमियों के तेरहवें अध्याय के आरम्भ में सरकारी अधिकारियों अर्थात् शासन-प्रशासन के प्रति आदर-सम्मान की शिक्षा दी गई है। हमारे देश का सर्वोच्च पदाधिकारी कौन है? उसके अधीन राज्यपाल तथा अन्य प्रतिनिधि होते हैं। क्या हमें अपने देश के अधिकारियों की बात माननी चाहिए? यदि वे परमेश्वर-भक्त नहीं हैं, तब भी?

कृपया पहले पद पर ध्यान दें! "प्रत्येक व्यक्ति राज्य के अधिकारियों के अधीन रहे, क्योंकि कोई अधिकार ऐसा नहीं जो परमेश्वर की ओर से न हो, और जो हैं वे परमेश्वर के द्वारा ठहराए हुए हैं"। यहाँ "प्रत्येक व्यक्ति" का भावार्थ विश्वासियों से है, क्योंकि यह पत्री विश्वासियों के लिए लिखी गई है (रोमियों 1:6-8) "अधिकारियों" से तात्पर्य राज्य के अधिकारियों से है जो प्रभु परमेश्वर द्वारा ठहराए गये हैं और जिनके हाथ में शासन चलाने की सरकारी जिम्मेदारी परमेश्वर द्वारा दी गई है। प्रधान अधिकारियों या राज्य के अधिकारियों के "अधीन" रहने का मतलब है : उन्हें समुचित आदर-मान देना और सातवें पद के अनुसार "जिसे जो देना है, उसे दो"। हमें इस बात से परेशान होने की जरूरत नहीं है कि अधिकारीगण विश्वासी हैं या नहीं; क्योंकि "कोई अधिकार ऐसा नहीं जो परमेश्वर की ओर से न हो"। स्मरण रहे कि मसीह यीशु ने यहूदियों (यहूदिया क्षेत्र) पर शासन करने वाले एक सबसे खतरनाक (खराब) रोमन राज्यपाल पोन्तुस पिलातुस के अधीन सतावट सहन किया और पौलुस प्रेरित ने एक अन्य क्रूर रोमन सम्राट नीरो के अधीन दुःख उठाया। न तो मसीह यीशु ने और न ही उसके सेवक

पौलुस ने इन शासकों के अधिकार का इनकार किया। ध्यान दें कि इन "अधिकारियों" को हमारी "भलाई के लिए परमेश्वर के सेवक" कहा गया है तथा अधिकार का इस्तेमाल करने को "परमेश्वर की सेवा करना" (13:4)। परमेश्वर द्वारा ठहराए गये अधिकारी बुरा काम करने वालों को दंड देने के लिए हैं; अर्थात् ईश्वरीय प्रकोप के अनुसार आवश्यकता पड़ने पर दंडित करना (तलवार मृत्युदंड की ओर इशारा करती है)। नूह के जमाने में शासन चलाने की जिम्मेदारी मनुष्य को सौंपते समय प्रभु परमेश्वर ने यह कहा : "जो कोई मनुष्य का लहू बहाएगा, उसका लहू मनुष्य द्वारा ही बहाया जाएगा" (उत्प0 9:6)। बेशक, प्रभु परमेश्वर ने मानव-शासन व्यवस्था को स्थापित किया, और तब कुछ खास लोगों को इस शासन-व्यवस्था को लागू करने का दायित्व सौंपा (नियुक्त किया) (प0 पत0 2:13, 14)।

*"इसलिए जो अधिकार का सामना करता है, उसने परमेश्वर की विधि का विरोध किया है, और जिन्होंने विरोध किया है वे स्वयं दंड के भागी होंगे"* (रोमियों 13:2)। केवल आध्यात्मिक बातों (अर्थात् परमेश्वर की बातों) के सम्बन्ध में हमें मनुष्य की बात से "बढ़कर" "परमेश्वर की आज्ञा" को मानने का निर्देश दिया गया है (प्रेरि0 4:18-20)। लेकिन पार्थिव या इहलौकिक बातों के सम्बन्ध में हम परमेश्वर द्वारा ठहराए या नियुक्त की गयी अधिकार-सत्ता के अधीन हैं, और इनका 'विरोध नहीं करना' है। परमेश्वर प्रदत्त अधिकार-सत्ता का विरोध करने वाले अपने ऊपर दोष एवं ईश्वरीय ताड़ना लाते हैं। विश्वासीजन को परमेश्वर द्वारा ठहराई या नियुक्त



की गई अधिकार-सत्ता (शासन-प्रशासन) का संसार के अन्य लोगों से बढ़ कर आदर करना चाहिए। *“क्योंकि अधिकारी अच्छे कार्य के लिए नहीं, परन्तु बुरे कार्य के लिए भय का कारण हैं। क्या तुम अधिकारी से निर्भय रहना चाहते हो? तो वही करो जो अच्छा है, जिस से अधिकारी के द्वारा तुम्हारी प्रशंसा हो”* (रोमियों 13:3)। इस सम्बन्ध में सामान्य नियम यही है, यानि प्रत्येक विश्वासी को शासकों (अधिकारियों) के समक्ष प्रशंसनीय होना है। लेकिन हम यह भी जानते हैं कि सुसमाचार का बहुत विरोध होता है, और परमेश्वर के लोगों के विरुद्ध तमाम झूठे इल्जाम लगाए जाते हैं, तथा बहुत उत्पीड़न किया जाता है। अतः सम्भव है कि परमेश्वर की इच्छानुसार, प्रभु के कुछ विश्वासियों को भलाई करने के बावजूद घोर सतावट सहनी पड़े (प0 पत0 3:17)।

*“क्योंकि वह तेरी भलाई के लिए परमेश्वर का सेवक है। परन्तु यदि तू वह करे जो बुरा है, तो डर, क्योंकि वह तलवार व्यर्थ ही नहीं धारण करता। वह परमेश्वर का सेवक है, जो परमेश्वर के प्रकोप के अनुसार बुराई करने वाले को दण्ड देने वाला है”* (रोमियों 13:4)। किसी अच्छी सरकार द्वारा बल का सही उपयोग क्रूरता की रोकथाम करता है, न्याय-व्यवस्था को बनाए रखता है, भला (अच्छा) करने वालों को सुरक्षा प्रदान करता है (13:3), और बुरा करने वालों को दंड देता है। *“अतः केवल प्रकोप के कारण ही नहीं, परन्तु विवेक के कारण भी अधीनता में रहना अनिवार्य है”* (13:5)। सिर्फ दंड से दूर रहने के लिए ही विश्वासी जन को मानव-शासन की अधीनता में नहीं रहना है, बल्कि परमेश्वर के प्रति प्रेमी विवेक के कारण।

क्योंकि मानव-अधिकार की अधीनता में रहने वाला विश्वासी यह जानता है कि वह ऐसा करने के द्वारा परमेश्वर की दृष्टि में जो सही है वही कर रहा है, और साथ ही साथ अपने लिए (इसका उल्टा करके दंडात्मक) परेशानी नहीं पैदा कर रहा है।

*“इसी कारण तुम भी कर चुकाते हो, क्योंकि अधिकारी परमेश्वर के सेवक हैं जो इसी सेवा में लगे हैं”* (रोमियों 13:6)। यहाँ अधिकारियों को “परमेश्वर के सेवक” कहा गया है। इब्रानियों 1:14 में स्वर्गदूतों के लिए यही शब्द इस्तेमाल हुआ है “सेवा करने वाली आत्माएं”। पुराना नियम के याजकों की सेवकाई के लिए भी यही शब्द इस्तेमाल हुआ है (इब्रा0 10:11)। आज के संयम एवं सत्ता (अधिकार) विरोधी वातावरण में हम विश्वासियों को यह नहीं भूलना है कि सरकारी अधिकारी परमेश्वर के सेवक हैं – इस धरती पर सरकारी शासन-प्रशासन के लिए (स्वर्गिक या आध्यात्मिक सेवकाई के लिए नहीं)। इसीलिए जिन पर वह शासन-प्रशासन करते हैं, उन्हें सरकारी टैक्स वगैरह चुकता करना चाहिए; क्योंकि इन सरकारी सेवकों के लिए आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति होना जरूरी है। *“इसलिए जिसे जो देना है, उसे दो; जिसे कर चुकाना है, उसका कर चुकाओ; जिसे चुंगी देनी है, उसे चुंगी दो; जिस से डरना चाहिए, उस से डरो; जिसका आदर करना है, उसका आदर करो”* (रोमियों 13:7)। रोचक है कि प्रजा (नागरिकों) द्वारा शासन-सत्ता को दिए जाने वाले ‘कर’, ‘चुंगी या सीमा-शुल्क’, जैसे टैक्स ईश्वरीय योजना के विपरीत नहीं हैं (लूका 20:22)। पौलुस यह भी कहता है कि “जिस से डरना

चाहिए, उससे डरो"। यहाँ "डरने" का अर्थ आतंकित या भयभीत होने की अपेक्षा आदरमय भय-भाव से है, अर्थात् जिनके हाथों में प्रभु परमेश्वर ने सरकारी शासन का अधिकार दे रखा है उनके प्रति आदरपूर्ण भय-भाव होना - पुलिस, मजिस्ट्रेट, जज, राज्यपाल, राष्ट्रपति, राजा इत्यादि के प्रति। माननीय या आदरणीय पदों पर आसीन अधिकारियों के प्रति आदर-सम्मान की प्रवृत्ति रखनी चाहिए। इसी बात को पतरस अपनी पहली पत्री के दूसरे अध्याय के सत्रहवें पद में इस प्रकार कहता है : "सब का आदर करो। भाइयों से प्रेम रखो। परमेश्वर से डरो। राजा का सम्मान करो"।

"आपस के प्रेम को छोड़ और किसी बात में किसी के कर्जदार न हो; क्योंकि जो दूसरे से प्रेम करता है, उसने व्यवस्था को पूर्ण किया है" (रोमियों 13:8)। हमारे समस्त क्रिया-कलाप की जड़ प्रेम होना चाहिए। इसके साथ अन्य किसी व्यवस्था की जरूरत नहीं है (मत्ती 22:36-40)। हाँ, शेष सभी ऋण जरूर चुकता करें; केवल प्रेम रूपी कर्ज के कर्जदार रहें। इसीलिए पौलुस आगे लिखता है : "जो दूसरों से प्रेम करता है, उसने व्यवस्था को पूर्ण किया है"। ध्यान दें कि प्रेम ने व्यवस्था को पूरा किया है, न कि व्यवस्था-पालन ने। जो प्रेम करता है, वह (व्यवस्था की अधीनता बगैर) व्यवस्था के तकाज़े को (अपने जीवन-आचरण से) प्रकट करता है।

"इस कारण, 'न तो व्यभिचार करना, न हत्या करना, न चोरी करना, न ही लालच करना', और इनके अतिरिक्त यदि अन्य और कोई आज्ञा हो, तो सब का सारांश इस कथन में पाया जाता है, 'अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख'। प्रेम पड़ोसी की

बुराई नहीं करता, इसलिए प्रेम करना व्यवस्था को पूर्ण करना है” (रोमियों 13:9-10)। परमेश्वर के अनुग्रह पर आधारित प्रेम, किसी दूसरे को ईर्ष्यावश नुकसान नहीं पहुंचाता। इसीलिए प्रेम को व्यवस्था की पूर्णता (सम्पूर्णता, समग्रता, परिपूर्णता यानि फुलनेस) कहा गया है, (व्यवस्था की फुलफिलिंग या पालन नहीं)। केवल वही जो व्यवस्था के अधीन नहीं है, वास्तव में दूसरों से प्रेम करने के लिए स्वतंत्र है। यहाँ इस सच्चाई पर भी ध्यान देना हितकर होगा कि मसीहियत का प्रमुख, प्रभावी एवं सक्रिय सिद्धान्त प्रेम है, न कि धार्मिकता। बेशक, जो प्रेम कर रहा है, वह धार्मिकता प्रकट कर रहा है। अतः जो व्यवस्था की अधीनता (बन्धन) में नहीं हैं, केवल वही इसकी पूर्णता प्रकट करते हैं। यहाँ यह भी नहीं भूलना है कि विश्वासीजन एक “नई सृष्टि” है और अब उसे एक असीम उच्चतर ‘जीवन-सामर्थ्य’ (गला0 5:15-16) के अनुसार जीना है, न कि व्यवस्था की अधीनता में।

“समय का ध्यान रखते हुए ऐसा ही करो। अतः तुम्हारे लिए नींद से जाग उठने की घड़ी आ पहुंची है, क्योंकि जिस समय हमने विश्वास किया था, उसकी अपेक्षा अब हमारा उद्धार अधिक समीप है” (रोमियों 13:11)। प्रेरितों ने प्रायः विश्वासियों को प्रेमपूर्ण पवित्र आचरण में प्रोत्साहित करने हेतु प्रभु के पुनरागमन की आशा का उपयोग किया। यह पद भी अनेक विश्वासियों की निराशा, हताशा और आत्मिक ढिलाई की ओर इशारा करता है (जैसे कि दस कुंवारियों की अजागरूकता - मत्ती 25:1-13)। विश्वासियों को ‘समय की पहचान’ होनी चाहिए। प्रभु यीशु ने तत्कालीन यहूदियों को

‘समय की अज्ञानता’ के बारे में फटकार लगाई (लूका 12:54-57)। वह यहूदी लोग परमेश्वर-प्रदत्त समझ-शक्ति को मौसम के चिन्हों को जानने-पहचानने के लिए तो इस्तेमाल कर रहे थे, किन्तु आध्यात्मिक ज्ञान-समझ के लिए नहीं। नतीजतन वे उटपटांग विचार, विवाद व तर्क प्रस्तुत कर रहे थे। यह सब हमारे लिए एक चेतावनी है कि उनसे बढ़कर ज्ञान व ज्योति पाए हुए मसीही विश्वासियों को और जागरूक रहना है।

“रात्रि प्रायः बीत चुकी है, दिन निकलने पर है। अतः हम अन्धकार के कार्यों को त्याग कर ज्योति के शस्त्र धारण करें” (रोमियों 13:12)। प्रभु यीशु जब तक इस धरती पर था, “जगत की ज्योति” था (यूह0 9:5)। अब वह यहाँ से चला गया है, इसलिए आध्यात्मिक (मायने में) रात्रि का समय है। अब वह अपने विश्वासियों से कहता है कि ‘तुम जीवन के वचन को दृढ़तापूर्वक थामे रहकर संसार में ज्योति स्वरूप चमको’ (फिलि0 2:15-16)। “अन्धकार के कामों को त्यागना” है। चूंकि हमारा **पुराना मनुष्यत्व** मसीह के साथ क्रूसित हो चुका है, अतएव पवित्र आत्मा द्वारा हमें ऐसा करने (अन्धकार के कार्यों को त्यागने) की इच्छा एवं शक्ति प्रदान की जाती है (फिलि0 2:13)।

अब हम “ज्योति के शस्त्र धारण करें”। रात में सड़क पर चलते वक्त प्रायः सामने से आ रही मोटर गाड़ी की (तेज) रोशनी कुछ क्षणों के लिए हमें अन्धा सा कर देती है। प्रभु यीशु ने कहा : “इसलिए यदि तेरा सारा शरीर ज्योति से जगमगाता हो और किसी भी भाग में अंधेरा न हो तो वह पूर्णतः उसी प्रकार प्रकाशित होगा, जिस

प्रकार दीपक अपनी चमक से तुझे प्रकाश देता है" (लूका 11:33-36)। यह उद्धार पाए हुए लोग हैं अर्थात् ज्योति से परिपूर्ण लोग। या यूं कहें कि "ज्योति के शस्त्र धारण" किए लोग, या प्रभु यीशु मसीह की ज्योति से प्रकाशित जन (प0 यूह0 1:7अ)। ज्योति की चमक का सामना करना तलवार या गोली व बन्दूक का सामना करने से कठिन है। हमें "ज्योति के शस्त्र" धारण करने के लिए कहा गया है।

*"हम सीधी चाल चलें जैसे दिन में, न कि रंगरेलियों, पियक्कड़पन, संभोग, कामुकता, झगड़े और ईर्ष्या में"* (रोमियों 13:13)। बुरा कार्य करने वाले अन्धकार की बाट जोहते हैं (यूह0 3:19)। प्रभु परमेश्वर का धन्यवाद हो कि विश्वासीजन की 'रात बीत चुकी है', अब हम "ज्योति की संतान और दिन की संतान" हैं (प0 थिस्स0 5:5)। आइए, अब हम प्रभु कृपा से सिर्फ वही करें जो 'ज्योति और दिन' के अनुरूप है। मदिरा की मस्ती में रात की पार्टियों के बढ़ते रिवाज़ की ओर इस पद में कितना साफ इशारा है। 'अंतिम दिनों की बुराई' की ओर बढ़ते हुए समय में हमें ऐसी चेतावनियों पर ध्यान देकर इस पद में वर्णित बुराईयों से दूर रहने की जरूरत है (यहे0 21:25, 29)। कामुकता जैसी बुराईयों का रंगरेलियों एवं पियक्कड़पन से गहरा सम्बन्ध है। छोटी-छोटी बातों में तकरार, लड़ाई, झगड़े, ईर्ष्या, द्वेष यह सब हमारे स्वार्थीपन के पापों से जुड़े हैं (प0 कुरि0 3:3; 5:8; कुलु0 3:8; फिलि0 2:3)।

*"वरन् प्रभु यीशु मसीह को धारण कर लो और शारीरिक*

वासनाओं की तृप्ति में मन न लगाओ" (रोमियों 13:14)। सभी सच्चे विश्वासी (परमेश्वर की दृष्टि में, सैद्धान्तिक तौर पर) "प्रभु यीशु मसीह को धारण" (गला0 3:27) कर लिए हैं, जो हमारा जीवन है। कहने का मतलब यह है कि विश्वासीजन 'मसीह यीशु में' स्थापित या आरोपित कर दिया गया है। वर्तमान काल के लिए तथा अनन्त काल के लिए हमारे मसीही जीवन के वास्ते जो कुछ जरूरी है, वह सब पिता परमेश्वर ने "मसीह में", जो हमारा **जीवन** है, प्रदान कर दिया है। इस सच्चाई को जानना-समझना विश्वासी के लिए अत्यावश्यक है। परमेश्वर हमें यह सिखा रहा है कि पुराने मनुष्यत्व (अहं) पर भरोसा न रखें, और अपना सारा विश्वास नये मनुष्यत्व (मसीह) पर केन्द्रित होने दें। पवित्रशास्त्र हमें विश्वास द्वारा वह अपनाने को कहता है जिसे वास्तव में पिता परमेश्वर पूर्ण कर चुका है। क्रूस पर पूरा किए गये कार्य द्वारा उसने हमें पाप एवं स्वार्थ के अधिकार-अधीनता से मुक्त किया। **पुनरुत्थान** द्वारा उसने हमें पुनर्जीवित मसीह के साथ एकता में स्थापित किया। अब क्रूस पर सम्पन्न ईश्वरीय कार्य पर विश्वास के द्वारा पुराना मनुष्यत्व 'उतार (त्याग) दिया' जाता है, और जीवित मसीह के साथ अपनी एकता-स्थापना रूपी 'स्वर्गिक स्थिति' पर विश्वास के द्वारा **नया मनुष्यत्व** पहिन लिया जाता है (इफि0 4:22-24)। ध्यान दें कि शारीरकता के गढ़ों से आजादी के वास्ते मसीह के साथ सह-क्रूसित होने की आध्यात्मिक सच्चाई की ओर यहाँ पुनः इंगित किया गया है। पुराने मनुष्यत्व (आदम स्वभाव) के मसीह के साथ क्रूसित हो चुकने की सच्चाई को पहचानते हुए उसका (पुराने मनुष्यत्व का) दैनिक तौर पर 'उतार या त्याग दिया' जाना आवश्यक है

(रोमियों 6:11)। 'मसीह यीशु में' एक नई सृष्टि होने की सच्चाई को समझते-अपनाते हुए हम नये मनुष्यत्व को पहिन लेते हैं। इस प्रकार स्वार्थ-अहंकार के मृत्युजनक शासन से मुक्त होकर हम मसीह के जीवनदायक शासन में प्रवेश करते हैं।

इस पद के अन्त में पौलुस यह कहता है : "शारीरिक वासनाओं की तृप्ति में मन न लगाओ"। शारीरिकता की अन्तहीन अभिलाषाएं एवं वासनाएं हैं जो अपनी तृप्ति के लिए प्रयत्नशील रहती हैं : विलासिता, अहम्मान, आत्म-प्रशंसा, घमंड इत्यादि जैसी हजारों अभिलाषाएं। पवित्रशास्त्र यहाँ यह कहता है कि ऐसी शारीरिकतापूर्ण अभिलाषाओं को मन में स्थान नहीं देना है। अक्सर हम पहले से ऐसी बातों, वस्तुओं, व्यक्तियों या परिस्थितियों से सतर्क रहकर इन अभिलाषाओं पर मन लगाने से दूर रह सकते हैं। परन्तु केवल प्रभु यीशु मसीह को पहिनने के द्वारा ही ऐसी अभिलाषाओं का इनकार करने की इच्छा एवं सामर्थ्य मिलती है (गला0 3:17)।



## चौदह

प्रभु परमेश्वर ने जब इस्राएलियों को दस आज्ञाएं दीं, तब खान-पान तथा कुछ खास 'दिनों' से सम्बंधित आज्ञाएं भी दीं। मसीह यीशु के बलिदान, पुनरुत्थान, स्वर्गारोहण तथा पवित्र आत्मा के आगमन के बाद विश्वासियों का इन नियमों को मानना जरूरी नहीं रहा। लेकिन प्रारम्भिक कलीसिया में यहूदी पृष्ठभूमि से आए बहुत से मसीहियों ने इस सच्चाई को नहीं समझा। वे कुछ खास प्रकार की खाने की चीजों से परहेज तथा कुछ खास दिनों की आराधना को महत्वपूर्ण मानना, जारी रखने के पक्ष में थे। ऐसे लोगों को रोमियों के चौदहवें अध्याय में पौलुस ने "विश्वास में निर्बल" कहा है। रोमियों के चौदहवें तथा पन्द्रहवें अध्याय में पौलुस खासकर विश्वास में "बलवान" या सहनशील लोगों को सम्बोधित करता है (जो उसकी बातों को पचा सकते हैं); और ऐसा करते समय "निर्बलों" की अवस्था को भी दर्शाता है। "निर्बल" भाई से उसी की भलाई हेतु, किसी खास बात के बारे में अपने वैयक्तिक विश्वास को "बलवान" विश्वासी द्वारा, तब तक गुप्त रखना जब तक कि निर्बल जन विश्वास में बलवान होने की दिशा में खास उन्नति नहीं करता, सरल नहीं है। इसके लिए प्रेमपूर्ण आचरण जरूरी है, और सच्चा प्रेम करना बहुत महंगा होता है।

*"जो विश्वास में निर्बल हो उसे अपनी संगति में ले लो, परन्तु उसके विचारों पर विवाद करने के लिए नहीं। एक का विश्वास है कि वह सब कुछ खा सकता है, परन्तु वह जो विश्वास में निर्बल है, केवल सागपात ही खाता है। खाने वाला, न खाने वाले*

को तुच्छ न जाने, और न खाने वाला, खाने वाले पर दोष न लगाए; क्योंकि परमेश्वर ने उसे ग्रहण कर लिया है। तू कौन है जो दूसरे के सेवक पर दोष लगाता है? उसका स्थिर रहना या गिर जाना उसके स्वामी पर ही अवलम्बित है, और वह स्थिर कर दिया जाएगा, क्योंकि प्रभु उसे स्थिर करने में समर्थ है" (रोमियों 14:1-4)। जो विश्वास में दुर्बल हैं, उन्हें अपनी संगति में ग्रहण करना है, किन्तु उनके भिन्न विचारों पर विवाद करने के लिए नहीं। जिन विश्वासियों को वचन की शिक्षा का हमसे कम अवसर मिला है, अथवा विश्वास में हमसे दुर्बल दिखाई देते हैं, हमें अपनी संगति में उनका भी स्वागत करना चाहिए। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसे "निर्बल" लोगों में भी उद्धार के लिए सच्चा विश्वास है, क्योंकि मसीह उनका भी है (उनमें भी मसीह है, वे भी उसे मानते हैं)। परन्तु परम्परागत शिक्षा के कारण या व्यवस्था की धर्म-कर्म सम्बन्धी शिक्षा के कारण, या फिर मसीह के साथ सह-क्रूसित होने तथा उसके साथ अपनी वर्तमान शाश्वत् एकता सम्बन्धी सच्चाई को नहीं समझने के कारण, या फिर अन्य किसी कारण से वे "निर्बल" हैं। (यशा0 35:3, 4अ) सब विश्वासियों को एक बराबर (समान परिमाण में) ज्ञान नहीं होता, सबको परम्पराओं या रीति-रिवाजों से एक बराबर (एक परिमाण में) स्वतंत्रता नहीं होती; यहाँ तक कि सभी विश्वासी एक बराबर (एक ही परिमाण) ईश्वरीय अनुग्रह को नहीं अपनाए होते।

दूसरे पद में विश्वास की दृढ़ता और विश्वास की दुर्बलता के बारे में पौलुस ने जो कुछ लिखा है उसे समझना कठिन नहीं है।

प्रमुख संदेश यह है कि परमेश्वर के घराने का प्रधान (कलीसिया का सिर) मसीह है; और सब विश्वासी मसीह के सेवक हैं। अतः हममें से कोई भी जन, दूसरे के सेवक का न्याय न करे (दोष न लगाए); क्योंकि जिसका वह सेवक है उस स्वामी के समक्ष एक दिन हम सब को खड़ा होना है। इसलिए हमारी विफलता चाहे जो हो, या हमारे प्रति लोगों की धारणा चाहे जैसी हो; यह सच्चाई अटल है कि 'प्रभु हमें स्थिर करने में समर्थ है' और वही हमारा न्यायी है।

*"कोई तो एक दिन को दूसरे से बढ़कर मानता है, और दूसरा प्रत्येक दिन को एक समान मानता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने मन में इस विषय पर पूर्ण रूप से निश्चित हो जाए। वह जो विशेष दिन को मानता है, तो प्रभु के लिए मानता है; और जो खाता है, वह प्रभु के लिए खाता है, क्योंकि वह परमेश्वर को धन्यवाद देता है; और जो नहीं खाता है, वह प्रभु के लिए नहीं खाता है, और प्रभु का धन्यवाद करता है। क्योंकि हममें से न तो कोई अपने लिए जीता है और न कोई अपने लिए मरता है। क्योंकि यदि हम जीवित हैं तो प्रभु के लिए जीवित हैं या यदि हम मरते हैं तो प्रभु के लिए मरते हैं, इसलिए चाहे हम जीवित रहें या मरें, हम प्रभु ही के हैं"* (रोमियों 13:5-8)। कभी-कभी हम यह सुनते हैं कि क्या (सार्वजनिक आराधना के लिये नियत) प्रभु का दिन सप्ताह के अन्य दिनों से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है? नहीं, अपने आप में अन्य दिनों से ज्यादा पवित्र दिन नहीं है; कम से कम उस मायने में (पवित्र नहीं) जिस मायने में 'सब्त' का दिन इस्त्राएल के लिए विशिष्ट दिन था और रहेगा। कुलुस्सियों 2:16 में पौलुस इसे और स्पष्ट करता है :

“सब्त के दिन के विषय में कोई तुम्हारा न्यायी न बने”। यहाँ खास संदेश यह है कि हम मसीह के साथ पार्थिव धर्म-विधियों के लिए मर चुके हैं और अब उनको मानने के बन्धन में नहीं पड़ना है (गला0 4:10)। सम्भव है कि “निर्बल” विश्वासी का मन (विवेक) व्यवस्था सम्बन्धी इहलौकिक धर्म-विधियों से अभी भी प्रभावित हो और सप्ताह के प्रथम दिन को मजहबी तौर पर ज्यादा पाक-साफ मानता हो। बहरहाल अपने विश्वास में सुदृढ़ व मजबूत मसीही विश्वासी सप्ताह के प्रत्येक दिन को एक जैसा समझता है।

पौलुस कहता है : “प्रत्येक व्यक्ति अपने मन में इस विषय पर पूर्ण रूप से निश्चित हो जाए”। मूसा ऐसी बातें नहीं कह सकता था। क्योंकि व्यवस्था के अधीन ऐसी निर्णय-स्वतंत्रता नहीं थी। व्यवस्था का निचोड़ (सार) था – बन्धन या दासता। व्यवस्था की बातों में मनुष्य के चाल-चलन का नुस्खा दिया हुआ था और उसके विवेक के बारे में पहिले से ही फैसला सुनाया जा चुका (दोषी) था। कहने का मतलब यह है कि ‘सब्त’ के दिन लकड़ी इकट्ठा करने वाले का पत्थरवाह किया जाना निश्चित था। अब (नयी वाचा के अधीन) ऐसा नहीं है। अब हम मूसा की व्यवस्था के अधीन नहीं, बल्कि पुनर्जीवित मसीह अर्थात् प्रभु परमेश्वर के शाश्वत अनुग्रह के अधीन हैं। अब हम पावन स्वतंत्रता के एक अद्भुत जीवन-क्षेत्र में प्रवेश कर चुके हैं। इसमें ‘प्रत्येक जन अपने मन व विवेक में सुनिश्चित होने के लिए’ तथा मसीह के स्वतंत्र लोगों की तरह जीवन जीने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।

“इसी कारण मसीह मरा और फिर जी भी उठा कि वह मृतकों और जीवितों दोनों का प्रभु हो। पर तू अपने भाई पर क्यों दोष लगाता है? या तू फिर अपने भाई को क्यों तुच्छ जानता है? क्योंकि हम सब परमेश्वर के न्यायासन के समक्ष खड़े होंगे। क्योंकि लिखा है, ‘प्रभु कहता है, मेरे जीवन की शपथ, प्रत्येक घटना मेरे सम्मुख टिकेगा और प्रत्येक जीभ परमेश्वर की स्तुति करेगी’। इसलिए, हम में से प्रत्येक व्यक्ति परमेश्वर को अपना अपना लेखा देगा” (रोमियों 14:9-12)। स्मरण रहे कि इन पदों की बातें सेवा-पुरस्कार के सम्बन्ध में लिखी गई हैं, न कि उद्धार-प्राप्ति (और न ही उद्धार खोने) के सम्बन्ध में। पहला कुरिन्थियों 3:13-15 में लिखा है : “यदि किसी मनुष्य का निर्मित कार्य जो उसने किया है, स्थिर रहेगा तो उसे प्रतिफल मिलेगा। यदि किसी व्यक्ति का कार्य जल जाएगा तो वह हानि उठाएगा, परन्तु वह स्वयं बच जाएगा” (दू0 कुरि0 5:10 भी देखें)। रोमियों के उपर्युक्त बारहवें पद में इस सच्चाई पर जोर दिया गया है कि प्रत्येक जन को अपना हिसाब देना होगा, न कि दूसरों का; और यह लेखा परमेश्वर के समक्ष देना होगा न कि किसी मनुष्य के सामने।

“अतः हम अब से एक दूसरे पर दोष न लगाएं, पर यह निश्चय कर लें कि कोई अपने भाई के मार्ग में बाधा या ठोकर खाने का कारण न बने। मैं जानता हूं और प्रभु यीशु में मुझे निश्चय है कि कोई वस्तु अपने आप में अशुद्ध नहीं है; परन्तु जो उसको अशुद्ध समझता है, उसके लिए वह अशुद्ध है। क्योंकि तेरे भोजन के कारण यदि तेरे भाई को ठोकर लगती है तो तू अब प्रेम की रीति पर नहीं

चल रहा है। जिसके लिए मसीह ने प्राण दिया, तू अपने भोजन के द्वारा उसे नाश कर" (रोमियों 14:13-15)। यहाँ पौलुस हमें यह सिखाता है कि हमें अपना मूल्यांकन, जांच-परख या न्याय करना है, न कि अपने भाई का (उस पर दोष नहीं लगाना है)। इसके साथ ही, हमें ऐसा कुछ करने से दूर रखना है जिससे किसी को विध्वन-बाधा पहुँचे या ठोकर लगे। भयावह तथ्य यह है कि यदि हम ठोकर का कारण बनते हैं तो हमारी आध्यात्मिक स्वतंत्रता "हमारे विश्वासी भाई" को बर्बादी की ओर ले जा सकती है।

"अब आशा का परमेश्वर तुम्हें विश्वास करने में सम्पूर्ण आनन्द और शांति से परिपूर्ण करे, जिस से पवित्र आत्मा की सामर्थ्य से तुम्हारी आशा बढ़ती जाय" (रोमियों 15:13)। "आशा" पूर्ण भरोसे के साथ सतत प्रतीक्षा या प्रत्याशा में रहती है। "आशा का परमेश्वर" हमें "आनन्द और शांति से परिपूर्ण" करना चाहता है "जिससे पवित्र आत्मा की सामर्थ्य" से हमारी "आशा बढ़ती जाए"। चूंकि हमारा परमेश्वर "आशा का परमेश्वर है", इसलिए विश्वासीजन की निराशा, हताशा, खिन्नता एवं उदासी शारीरिकता पर मन लगाने जैसा है जो कि परमेश्वर की इच्छा के विपरीत है। प्रभु परमेश्वर की इच्छा यह है कि प्रत्येक विश्वासी "आशा में बढ़ता जाय"। बेशक, केवल प्रभु परमेश्वर ही हमें सच्चे "आनन्द और शांति से परिपूर्ण" करके ऐसी आशा में बढ़ाने में समर्थ है। यह अनुभव रोमियों में वर्णित सर्वोच्च अनुभव (15:13) है। हाँ, प्रभु परमेश्वर की इच्छा है कि सब विश्वासी "आनन्द और शांति से परिपूर्ण" हों। लेकिन यह कैसे सम्भव है? "विश्वास करने" के द्वारा। इसी पद से बिल्कुल स्पष्ट है - "विश्वास

करने में" तुम्हें "सम्पूर्ण आनन्द और शांति से परिपूर्ण करे, जिससे पवित्र आत्मा की सामर्थ्य से तुम्हारी आशा बढ़ती जाए"। कहने का मतलब यह है कि दैनिक तौर पर "आनन्द और शांति से परिपूर्ण" विश्वास का जीवन तथा "आशा की विपुलता"- **मसीह में** प्रत्येक विश्वासी की यही सामान्य अवस्था होनी है।

*"हे भाइयों, जहाँ तक तुम्हारा सम्बन्ध है, मैं पूर्णतया आश्वस्त हूँ कि तुम स्वयं भलाई और समस्त ज्ञान से परिपूर्ण हो तथा एक दूसरे को चिताने के योग्य भी हो"* (रोमियों 15:14)। इस पत्री को लिखने से पूर्व पौलुस रोम कभी नहीं गया था, किन्तु वहाँ के मसीहियों के विश्वास एवं आत्मिक दशा के बारे में सुना था (रोमियों 1:8)। *"परन्तु मैंने तुम्हें कुछ विषयों पर पुनः स्मरण दिलाने के लिए बड़े हियाव के साथ लिखा है। यह उस अनुग्रह के कारण हुआ जो परमेश्वर ने मुझे दिया था, कि गैरयहूदियों के लिए मसीह यीशु का सेवक बनूँ और परमेश्वर के सुसमाचार की सेवा याजक के समान करूँ कि गैरयहूदी रूपी मेरी भेंट पवित्र आत्मा से पवित्र की जाकर ग्रहण की जाए"* (रोमियों 15:15-16)। अब इन पदों में रोम के विश्वासियों को पौलुस उस विशिष्ट व महान "अनुग्रह" की याद दिला रहा है जो परमेश्वर की ओर से उसे प्रदान किया गया था - परमेश्वर का सुसमाचार । पौलुस यह नहीं भूला था कि वह गैरयहूदियों के लिए मसीह का चुना हुआ पात्र था, एक अन्य 'प्रेरित' मात्र नहीं (गला0 2:7-9)। प्रभु परमेश्वर की ओर से पौलुस को गैरयहूदियों के लिए विशिष्ट सेवा-दायित्व प्रदान किया गया था, जैसे कि मूसा को इस्राएल के लिए सेवा-दायित्व मिला था। मूसा ने

तो अपने सेवा-बोझ की शिकायत भी की (गिन० ११:११-१५), लेकिन पौलुस ने इस सम्बन्ध में कभी कोई शिकायत नहीं की (दू० कुरि० ११:२८-२९)। पौलुस ही था जो हमारी "आत्मा के लिए बहुत आनन्द से खर्च करने और खर्च होने" के लिए तत्पर था। पौलुस ही था जिसने हमें 'फलवन्त' होते देखना चाहा और 'जो उसको नहीं देखे थे' उनके लिए भी आत्मिक बोझ के साथ प्रार्थना किया (कुलु० २:१; गला० ४:१९)। सोलहवें पद से स्पष्ट है कि पौलुस द्वारा प्रचारित 'अनुग्रह के सुसमाचार' बगैर "गैरयहूदी रूपी भेंट" को परमेश्वर "ग्रहण" नहीं करता। क्योंकि इस्राएल के पास तो **ईश्वरीय व्यवस्था** की भेंट-बलिदान रूपी धर्म-विधियां थीं लेकिन गैरयहूदियों के पास ऐसा कुछ नहीं था। अतः जिसके पास कुछ नहीं था उनके लिए पौलुस द्वारा प्रचारित "अनुग्रह के सुसमाचार" में मुफ्त में (आत्मिक रूप से) सब कुछ प्रदान किया।

*"अतः मुझे मसीह यीशु में उन बातों के विषय जो परमेश्वर से सम्बन्धित हैं, बड़ाई करने का कारण प्राप्त हुआ है। उन बातों को छोड़, मैं अन्य किसी बात में कहने का साहस न करूंगा जो मसीह में गैरयहूदियों की आज्ञाकारिता के लिए वचन और कर्म से, चिन्हों और अद्भुत कार्य की सामर्थ्य से, और पवित्र आत्मा की सामर्थ्य से, मेरे ही द्वारा पूर्ण किए, यहाँ तक कि मैंने यरुशलेम से लेकर चारों ओर इल्लुरिकम तक मसीह के सुसमाचार का पूरा-पूरा प्रचार किया"* (रोमियों १५:१७-१९)। मूसा की सेवकाई से कितनी भिन्न सेवा मूसा ने भी परमेश्वर की अधीनता में कार्य किया। चालीस वर्ष तक निरन्तर आश्चर्यजनक तरीके से अनेक देशों के मध्य उसने



इस्राएलियों की बियावान में अगुवाई की। परमेश्वर सार्वजनिक तौर पर मूसा का बचाव करता रहा, यहाँ तक कि उसके विरोधियों को धरती के निगलने द्वारा दंडित किया (गिन० 16:31)। बाह्य तौर पर मूसा का पूरा जीवन और सेवकाई अद्भुत है। परन्तु पौलुस की सेवा-जीवनी भिन्न है। अपने प्रभु की तरह पौलुस को सांसारिक तौर पर तिरस्कृत एवं तुच्छ समझा गया, और वह मसीह की "मृत्यु की समानता" में उन्नति करने का आकांक्षी था (फिलि० 3:10)। अतएव सत्रहवें पद की भांति पौलुस अपने लेखों में अनेक जगह सिर्फ परमेश्वर तथा परमेश्वर द्वारा किए गये कामों पर ही गर्व करने की बात कहता है। वह जिसने अपने आप को "प्रेरितों में सबसे छोटा" कहा, उसे प्रभु परमेश्वर ने सबसे बड़ा स्थान प्रदान किया। यानि उसे "गैरयहूदियों के लिए प्रेरित", "गैरयहूदियों के लिए विश्वास और सत्य" का शिक्षक मात्र ही नहीं बल्कि परमेश्वर के समक्ष आधिकारिक तौर पर गैरयहूदियों को "भेंट" स्वरूप अर्पित या प्रस्तुत करने वाला भी ठहराया (प० कुरि० 15:9; रोमियों 11:13; प० तीमु० 2:7)। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि इन बातों के बारे में पौलुस सिर्फ परमेश्वर की ही "बड़ाई" कर रहा था। हाँ, बाह्य तौर पर "अग्नि और बादल का खम्भा" नहीं था, मंदिर या औपचारिक उपासना स्थल नहीं था। जैसे प्रभु परमेश्वर ने इस्राएल को मूसा के हाथों में सौंप दिया था, उसी प्रकार गैरयहूदियों में सेवकाई का दायित्व पौलुस को सौंप दिया था। इन बातों को ध्यान में रखकर अगले अर्थात् अट्ठारहवें पद को समझना सरल होगा। अर्थात् प्रभु यीशु मसीह ने पौलुस के द्वारा जो कुछ किया, सिर्फ उन्हीं बातों के बारे में वह बोलना चाहता था -

सुसमाचार प्रचार द्वारा और पवित्र आत्मा की उपस्थिति एवं सामर्थ्य द्वारा "यरुशलेम से लेकर चारों ओर इल्लुरिकम तक मसीह के सुसमाचार का पूरा-पूरा प्रचार किया"। ध्यान दें उस पूरे क्षेत्र में पौलुस ने "सुसमाचार प्रचार का पूरा-पूरा प्रचार" किया। इतना प्रचार किया कि तेईसवें पद के अनुसार "अब इन प्रदेशों में" उसके लिए "कोई स्थान नहीं" शेष रह गया था।

"मेरे मन की आकांक्षा यह रही है कि जहाँ मसीह का नाम नहीं लिया गया, वहाँ सुसमाचार सुनाऊँ ऐसा न हो कि दूसरे की नींव पर घर बनाऊँ। परन्तु जैसा लिखा है, 'जिन्हें उसका सुसमाचार नहीं पहुंचा, वे ही देखेंगे, और जिन्होंने नहीं सुना वे ही समझेंगे'। इस कारण मैं तुम्हारे पास आने से बहुधा रुका रहा। परन्तु अब इन प्रदेशों में मेरे लिए कोई स्थान नहीं रहा, और बहुत वर्षों से, मुझे लालसा है कि स्पेन जाते समय तुम्हारे पास आऊँ। मुझे आशा है कि मैं तुम्हारे यहाँ से होता हुआ जाऊँगा कि तुम्हारे संगति का क्षण भर आनन्द उठाऊँ और तुम मुझे कुछ दूर आगे पहुंचा देना" (रोमियों 15:20-24)। "यरुशलेम से इल्लुरिकम तक" सुसमाचार सेवा के अवसरों के कारण पौलुस रोम जाने से रुका रहा। यहाँ प्रयोग किया गया "बहुधा" या "बार-बार" शब्द यह दर्शाता है कि पौलुस रोम के विश्वासियों से भेंट करने का बहुत इच्छुक था और उनके बारे में अक्सर सोचा करता था (प0 थिस्स0 2:18)। वह रोम के विश्वासियों से सिर्फ भेंट का ही इच्छुक नहीं था बल्कि यह भी चाहता था कि वे स्पेन की ओर उसे "कुछ दूर आगे पहुँचाएँ" (संभवतः उसकी सहायता करें - तन, मन, धन से)।

“अब हे भाइयों, हमारे प्रभु यीशु मसीह और पवित्र आत्मा के प्रेम के द्वारा मैं तुम से विनती करता हूँ कि मेरे लिए परमेश्वर से प्रार्थना करने में मेरे साथ लगे रहो, जिस से मैं यहूदिया के अविश्वासियों से बचा रहूँ और मेरी यरुशलेम की सेवा पवित्र लोगों को मान्य हो, कि मैं परमेश्वर की इच्छा से आनन्द के साथ तुम्हारे पास आऊँ और तुम्हारी संगति से विश्राम प्राप्त करूँ। अब शांति का परमेश्वर तुम सब के साथ रहे। आमीन” (रोमियों 15:30-33)। पौलुस इन पदों में सन्तों से उसके लिए प्रार्थना करने का निवेदन करता है; ऐसा निवेदन जो शायद उसकी अन्य किसी पत्री में नहीं पाया जाता। परमेश्वर के समक्ष अपनी दुर्बलताओं का अंगीकार तथा उस पर अपनी सतत् निर्भरता रूपी आवश्यकता को मानना (स्वीकरण) ही सच्ची बाइबेलीय प्रार्थना है। अपनी दुर्बलता को पौलुस भलीभाँति पहचानता था, और यरुशलेम में उसकी सेवकाई की सफलता सिर्फ परमेश्वर की कृपा से ही सम्भव थी। इसीलिए उसने रोम के विश्वासियों से प्रार्थना करने की अपील की, और परमेश्वर ने उनकी प्रार्थना का जवाब दिया। रोम के विश्वासी धैर्यपूर्वक उसके आगमन की प्रतीक्षा किए और दो वर्ष तक कैसरिया में कैद रहने के बाद, अन्ततः एक कैदी के रूप में पौलुस रोम पहुंचा। हाँ, यह सब परमेश्वर के समय में और इच्छानुसार हुआ; रास्ते में पौलुस को समुद्री तूफान एवं टूटते जहाज का खतरनाक अनुभव भी मिला। “अब शांति का परमेश्वर तुम सब के साथ रहे, आमीन।” पौलुस द्वारा लिपिबद्ध यह आशीष-वचन पौलुस के मन की अद्भुत शांति को दर्शाता है – परमेश्वर की इच्छा में विचरण और उसके लोगों के प्रति उमड़ता प्रेम।

“अब हे भाइयों मैं तुमसे बिनती करता हूँ कि उस शिक्षा के विपरीत जो तुमने पाई है, उसमें जो लोग फूट और रुकावट डालते हैं, उन्हें ताड़ लिया करो और उनसे दूर रहो। क्योंकि ये मनुष्य हमारे प्रभु यीशु मसीह के नहीं, परन्तु अपने पेट के दास हैं; और अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से सीधे-सादे लोगों को बहका देते हैं” (रोमियों 16:17-18)। रोम में ऐसे लोग भी थे जो प्रभु के विश्वासियों में फूट और विध्न-बाधा पैदा कर रहे थे। कितना अविश्वसनीय प्रतीत होता है कि प्रभु के प्रेमियों के परस्पर प्रेम एवं उनकी आध्यात्मिक एकता का परमेश्वर के शत्रुओं द्वारा विरोध हो। लेकिन संसार में ऐसा ही होता है; और इसीलिए पौलुस ऐसे लोगों से “सावधान” रहने की चेतावनी देता है (फिलि0 3:2; कुलु0 2:8)। जो लोग उनमें मतभेद या फूट डाल रहे थे और पौलुस द्वारा दी गई “शिक्षा के विपरीत” सिखा रहे थे “उनसे दूर रहना” ही अच्छा था (दू0 थिस्स0 3:6; तीतुस 3:10; दू0 यूह0 दसवां पद)। जैसे अदन की वाटिका में शैतान को उसकी धूर्तता के द्वारा हव्वा की परीक्षा करने से परमेश्वर ने नहीं रोका, उसी प्रकार वह झूठे शिक्षकों, फूट डालने वालों और बुरे कार्यकर्ताओं को विश्वासियों की मंडली में आने से (जबरन) नहीं रोकता। लेकिन अपने लोगों को इनके बारे में चेतावनी देता है और इनसे बचाव का मार्ग भी तैयार करता है (कुलु0 2:4; प0 कुरि0 10:13)।

“तुम्हारी आज्ञाकारिता का समाचार सब लोगों तक पहुंच गया है; इसलिए मैं तुम्हारे विषय में आनन्द कर रहा हूँ; परन्तु मैं यह चाहता हूँ कि तुम भलाई के लिए बुद्धिमान और बुराई के लिए

भोले बने रहो" (रोमियों 16:19)। रोमी साम्राज्य के सभी क्षेत्रों में रोम के इन मसीहियों के विश्वास एवं प्रेम की चर्चा हो रही थी (1:8)। फिर भी, पौलुस उनके प्रति अपनी यह चिन्ता व्यक्त करता है : "मैं यह चाहता हूँ कि तुम भलाई के लिए बुद्धिमान और बुराई के लिए भोले बने रहो"। यह सभी विश्वासियों की सुरक्षा के लिए एक महत्वपूर्ण नुस्खा है - "भलाई के लिए बुद्धिमान" रहो (फिलि0 4:8)। परन्तु इस वाक्य के दूसरे हिस्से, अर्थात् "बुराई के लिए भोले" का भावार्थ यह है कि झूठे शिक्षकों द्वारा सिखाई जाने वाली बातों में शामिल नहीं होना है। "भोले" शब्द का मूल भाषा यूनानी में अर्थ है - **अमिश्रित**। पहला कुरिन्थियों 13:5 के अनुसार, "प्रेम बुराई का लेखा नहीं रखता"। हाँ, हमारे चहुँओर बुराई है। लेकिन मसीह में स्थिर सच्चा विश्वासी इन बुराईयों के कारण डगमगाता नहीं।

*"शांति का परमेश्वर शीघ्र शैतान को तुम्हारे पैरों तले कुचलवा देगा। हमारे प्रभु यीशु मसीह का अनुग्रह तुम्हारे साथ हो"* (रोमियों 16:20)। मूल भाषा में "कुचलना" के लिए यहाँ जो शब्द प्रयोग हुआ है, वही शब्द मसीह द्वारा राष्ट्रों को "चकनाचूर" करने के सम्बन्ध में **प्रकाशित वाक्य 2:27** में भी प्रयुक्त हुआ है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि यह "कुचलना" परमेश्वर के "सन्तों के पैरों तले" होगा और "शीघ्र" होगा। शैतानी जीत और देरी की तरह प्रतीत होने वाली सारी विधनकारी बातों के बावजूद, हमें विश्वास से सुस्थिर रहना है। हमें यह जानकर प्रोत्साहित होना चाहिए कि परमेश्वर का परम शत्रु (शैतान) प्रभु के उन विश्वासियों से दूर भागता है जो इस धरती पर परमेश्वर की अधीनता में जीते हैं और

“विश्वास में दृढ़ रहकर उसका (शैतान का) विरोध करते हैं” (याकूब 4:7; प0 पत0 5:9)। इसके पश्चात् पौलुस यह आशीर्वाद देता है : “प्रभु यीशु मसीह का अनुग्रह तुम्हारे साथ हो, आमीन”। समस्त विश्वास करने वालों की देह (मंडली) का मसीह द्वारा निरन्तर दिए जाने वाले अनुग्रह से पालन-पोषण होता है।

*“जो तुमको मेरे सुसमाचार एवं यीशु मसीह के संदेशानुसार स्थिर कर सकता है, उस भेद के प्रकाश के अनुसार जो सनातन से गुप्त था, परन्तु अब प्रकट हुआ है और अनन्त परमेश्वर के आज्ञानुसार नबियों के शास्त्रों द्वारा सब जातियों को बताया गया है कि वे विश्वास से आज्ञाकारी बन जाएं। उसी अद्वितीय बुद्धिमान परमेश्वर की, यीशु मसीह के द्वारा, युगानुयुग महिमा हो। आमीन”* (रोमियों 16:25-27)। सामान्यतः लोग इस तथ्य को नहीं पहचान पाते कि इन पदों में पौलुस ने युगों से ‘गुप्त’ उस महान ईश्वरीय “रहस्य या भेद” के प्रकटन की ओर इशारा किया है जिसके बारे में उसने अपनी अन्य पत्रियों में विशेष वर्णन किया है (कुलु0 1:26)। इस गुप्त “रहस्य” को प्रभु परमेश्वर ने प्रेरित पौलुस द्वारा प्रकट किया। पच्चीसवें पद के अनुसार इस “भेद के प्रकाशना” की हमें “स्थिर करने” में महत्वपूर्ण भूमिका है। मूल भाषा के जिस शब्द को यहाँ “स्थिर” करने के मायने में इस्तेमाल किया गया है, वह यूनानी शब्द **नया नियम** में लगभग दस बार सुदृढ़ व स्थिर जीवन के मायने में प्रयोग हुआ है (लूका 22:32)। इस शब्द के भावार्थ में सिर्फ सत्य के दिमागी ज्ञान और मसीही लगाव की बात ही नहीं है बल्कि पवित्र आत्मा की सामर्थ्य से उस सत्य में जीवन व्यतीत करने की बात निहित है।

“मेरे सुसमाचार अर्थात् यीशु मसीह के विषय में प्रचार के अनुसार... उस भेद के प्रकाश के अनुसार” जैसे शब्दों के द्वारा पौलुस उस आश्चर्यपूर्ण ईश्वरीय अनुग्रह रूपी हस्तक्षेप की ओर इशारा कर रहा है जिससे विश्वासी जन सिर्फ पाप-क्षमा व धार्मिकता ही नहीं, बल्कि परमेश्वर की महिमा का भागीदार होता है (कुलु0 1:26-27)। “उसी एकमात्र सर्वज्ञ परमेश्वर की, यीशु मसीह द्वारा युगानुयुग महिमा हो”। पवित्रशास्त्र यही सतत् संदेश देता है कि मसीह यीशु के द्वारा परम प्रधान परमेश्वर की महिमा हो। इसके अतिरिक्त, रोमियों के प्रारम्भिक पंक्तियों में ही पौलुस यह स्पष्ट कर देता है कि परमेश्वर का यह सुसमाचार, परमेश्वर के “पुत्र” के विषय में है। परमेश्वर ही पहल करने वाला है। हमें हमारे पापों से छुटकारा देने के लिए भी उसी ने पहल की है।

## हमारे अन्य प्रकाशन

1. उत्पत्ति और उद्धार की कहानी
2. सुदृढ़ आधार
3. आत्मिक जन्म
4. परमेश्वर कृत उद्धार
5. आध्यात्मिक विकास के सिद्धान्त
6. वह मुझमें और मैं उसमें
7. प्रभु पर दृष्टि
8. उद्धार का अभिप्राय
9. पवित्र शास्त्र बाइबल की भविष्यवाणियाँ
10. प्रेरितों के काम